

अग्निशिखा

अखिल भारतीय पत्रिका

फरवरी २०१७

देवों की जननी



विषय-सूची

सन्देश/सम्पादकीय		३
दिव्य जननी		
(श्रीअरविन्द तथा श्रीमां के वचन)		
दिव्य जननी		५
सर्जनकारी परमा शक्ति		६
श्रीमां तथा अन्य देवता		९
ईश्वर के रूप तथा उनके कार्य		१५
ईश्वर तथा मानवता		२४
देवी-देवताओं के साथ सम्बन्ध		३५
श्रीमां की ओर खुलना		३६
'पुरोधा'		
दैनन्दिनी		४२
एक कप्तान के साथ श्रीमां का पत्र-व्यवहार	'श्रीमातृवाणी' से	४६
माताजी के बचपन की झांकी	श्री रवीन्द्रजी	४९
मेरी 'अम्माजी'	वन्दना	५२

अग्निशिखा का वार्षिक शुल्क :

एक वर्ष—१८०रु.; तीन वर्ष—५२०रु.; पांच वर्ष—८६०रु.।

पत्रिका हर महीने की ४ तारीख को प्रेषित की जाती है।

श्रीअरविन्द सोसायटी की मासिक पत्रिका

Website : www.aurosociety.org

सम्पादिका : वन्दना

प्रकाशक : प्रदीप नारंग, श्रीअरविन्द सोसायटी, पॉण्डिचेरी—६०५००२

मुद्रक : स्वाधीन चैटर्जी, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, पॉण्डिचेरी



सन्देश

भौतिक स्तर पर भगवान् अपने-आपको सौन्दर्य द्वारा, मानसिक स्तर पर ज्ञान द्वारा, प्राणिक स्तर पर शक्ति द्वारा और चैत्य स्तर पर प्रेम द्वारा अभिव्यक्त करते हैं।

जब हम पर्याप्त ऊपर उठ जाते हैं तो पता लगता है कि ये चारों पहलू एक ही चेतना में इकट्ठे हो जाते हैं जो प्रेम से भरपूर, प्रदीप्त, शक्तिशाली, सुन्दर, सभी को लिये हुए, सभी में व्याप्त होती है।

केवल वैश्व लीला की सन्तुष्टि के लिए ही यह चेतना स्वयं को विभिन्न दिशाओं या अभिव्यक्ति के भिन्न पहलुओं में विभक्त करती है। —श्रीमां

सम्पादकीय : श्रीमां का रूपान्तर का कार्य केवल मनुष्यों तक सीमित नहीं है। वस्तुतः चेतना के विभिन्न स्तरों और लोकों के अनगिनत दूसरे प्राणी भी मानव के साथ-साथ अतिमानसिक 'परम सत्ता' में विकसित होते जायेंगे, क्योंकि मनुष्य ही उन सबके बीच की कड़ी है। उसे इन सभी प्राणियों को साथ लेकर चलना है। इनमें वे सभी देवी-देवता भी हैं जिन्होंने अब तक युग-चक्रों को चलाया है। अतिमानसिक चेतना के अवतरित होने पर अब विकास-चक्र का जो नया युग प्रारम्भ हो रहा है उसमें मनुष्यों के साथ तथा धरती के साथ भी देवताओं के सम्बन्ध में निश्चय ही बदलाव आयेगा। मां, जो न केवल धरती, मानव, पशु-पक्षी, पेड़-पौधों की मां हैं, बल्कि देवताओं, यहां तक कि दानवों की भी जननी हैं, चिरकाल से अपनी सन्तानों पर प्रेम बरसा रही हैं, और साथ ही अतिमानसिक सृष्टि के अवतरण को आसान बनाने के लिए उन्हें 'नूतन मार्ग' दिखला रही हैं।

इस अंक में हम उनके इस कार्य की छोटी-सी झांकी प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहे हैं।



शिष्यः जब 'परम प्रभु' ने आपसे जगत् का निर्माण करने के लिए कहा, तो आपने कैसे जाना कि क्या करना चाहिये?

उसके लिए मुझे कुछ भी नहीं सीखना पड़ा, क्योंकि 'परम प्रभु' के अपने अन्दर सब कुछ है: सम्पूर्ण जगत्, जगत् का ज्ञान और उसे बनाने की शक्ति। जब उन्होंने निश्चय किया कि एक जगत् बने, तो पहले उन्होंने जगत् के ज्ञान और उसे बनाने की शक्ति को पैदा किया, वह मैं हूँ, और तब उन्होंने मुझे उसे बनाने की आज्ञा दी।

—श्रीमां

दिव्य जननी

... हमारी दिव्य जननी हमारे साथ हैं और उन्होंने हमें परम और समग्र चेतना के साथ तादात्म्य का वचन दिया है—अपरिमेय गहराइयों से लेकर इन्द्रियों के अत्यन्त बाह्य जगत् तक। और इन सभी क्षेत्रों में अग्निदेव अपनी पावन ज्वाला की सहायता देने का वचन देते हैं, वे सभी बाधाओं को भस्म कर देंगे, ऊर्जाओं को प्रज्वलित करेंगे, इच्छा को प्रोत्साहन देंगे ताकि सिद्धि जल्दी आ सके। हमारे ज्ञान में प्रदीपन की पूर्णता के लिए इन्द्रदेव हमारे साथ हैं और दिव्य सोमदेव ने हमें अपने उस अनन्त, परम, अद्भुत प्रेम में रूपान्तरित कर दिया है जो परम आनन्द को लाने वाला है ...।

हे दिव्य और मधुर जननी, मैं तुझे भाव-विभोर, अकथनीय कोमलता और अनन्त विश्वास के साथ नमन करती हूँ।

हे भव्य अग्निदेव, तू जो मेरे अन्दर इतने जीवन्त रूप में है, मैं तुझे पुकारती हूँ, मैं तेरा आह्वान करती हूँ कि तू और अधिक जीवित-जाग्रत् हो, कि तेरा यज्ञकुण्ड और अधिक विस्तृत हो, कि तेरी ज्वालाएं ज्यादा ऊंची और ज्यादा शक्तिशाली हों, कि सारी सत्ता अब केवल एक तीव्र ज्वलन्त, पावन चिता हो।

हे इन्द्रदेव, मैं तेरी पूजा और स्तुति करती हूँ, मैं तुझसे याचना करती हूँ कि तू मेरे साथ युक्त हो जा, कि तू निश्चित रूप से विचार के सब अवरोधों को भंग कर दे और तू मुझे दिव्य ज्ञान प्रदान कर।

—‘श्रीमातृवाणी’, खण्ड १, पृ. १४५

सर्जनकारी परमा शक्ति

एकमेव आद्या परात्पर शक्ति

आद्या परात्पर शक्ति के रूप में माता सब लोकों के ऊपर स्थित हैं और अपनी शाश्वत चेतना में परम पुरुष को धारण करती हैं। वे अकेली ही अपने अन्दर चरम शक्ति और ऐसी उपस्थिति को लिये रहती हैं जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। वे ही उन सत्त्यों को धारण करती या पुकारती हैं जिन्हें इस जगत् में प्रकट होना है। वे उन सत्त्यों को, उस रहस्यमय स्थान से, जहां वे छिपे हुए थे, उतार कर अपनी अनन्त चेतना की ज्योति में नीचे लाती हैं और उन्हें अपने सर्वशक्तिमान् सामर्थ्य के द्वारा शक्ति का रूप तथा असीम जीवन और विश्व में शरीर प्रदान करती हैं। परम पुरुष उस माता के अन्दर सनातन काल के लिए अनन्त सच्चिदानन्द के रूप में अभिव्यक्त हैं और उन्हीं के द्वारा लोकों में वे ईश्वर-शक्ति के एक और द्विविध रूप में तथा पुरुष-प्रकृति के द्वैत तत्त्व में अभिव्यक्त होते हैं। परम पुरुष माता के द्वारा अनेक लोकों और चेतना की भूमिकाओं में तथा देवता और उनकी शक्तियों में मूर्तिमान् हुए हैं। उन्हीं के कारण वे जाने और अजाने लोकों में जो कुछ है उन सब रूपों में साकार हुए हैं। सब कुछ परम पुरुष के साथ माता की लीला है। माता ने ही इस सारे संसार में सनातन के रहस्यों और अनन्त के चमत्कारों को व्यक्त किया है। माता ही सब कुछ हैं क्योंकि सभी चीजें दिव्य चित्शक्ति के अंश और भाग हैं। माता जिस बात का निश्चय करती हैं और जिसके लिए परम-पुरुष स्वीकृति देते हैं उसके सिवाय यहां या कहीं और, कुछ भी नहीं हो सकता। परम पुरुष की प्रेरणा से माता अपने सर्जनशील आनन्द में बीज के रूप में डाल कर जिन चीजों को देखती और आकार देती हैं उनके सिवाय अन्य कोई चीज रूप धारण नहीं कर सकती।

CWSA खण्ड ३२, पृ. १४-१५

महाशक्ति के रूप में मां

अतिमानस ज्योति, सत्य-जीवन और सत्य-सृष्टि के लोकों को ऊपर से यहां नीचे लाना है। नीचे चेतना के स्तरों की चढ़ती-उतरती दोहरी सीढ़ी

के जैसी श्रेणियां हैं जिनमें चेतना पहले जड़तत्त्व की निश्चेतना में गिरती है और फिर प्राण, मन और अन्तरात्मा को जीवन में खिलाती हुई आत्मा की अनन्तता में ऊपर उठती है। मां इन दोनों के बीच में अज्ञान के त्रिविध जगत् की महाशक्ति के रूप में निवास करती हैं। मां देवताओं के ऊपर रह कर जो कुछ देखती, अनुभव करती और अपने अन्दर से उत्पन्न करती हैं उसके द्वारा वे धरती के विकास-क्रम का निर्णय करती हैं और उस कार्य के लिए अपनी सभी शक्तियां और व्यक्तित्व अपने सामने रखती हैं। वे उनकी अंश-विभूतियों को निचले लोकों में मध्यस्थता, शासन, युद्ध और विजय प्राप्त करने के लिए, उनके काल-चक्र को बदलने और रास्ता दिखाने के लिए और उनकी शक्तियों को व्यक्तिगत और समष्टिगत मार्ग दिखाने के लिए भेजती हैं। मनुष्यों ने युग-युगान्तरों से दिव्य रूप और दिव्य व्यक्तित्व के रूप में इन अंश-विभूतियों की भिन्न-भिन्न नामों से पूजा करके वस्तुतः स्वयं माता की ही पूजा की है। और साथ ही जिस तरह माता ईश्वर की विभूतियों के मन और शरीर तैयार करके उन्हें रूप प्रदान करती हैं, उसी तरह अपनी इन शक्तियों और अंश-विभूतियों के द्वारा वे अपनी विभूतियों के मन और शरीर भी तैयार करती हैं, ताकि वे भौतिक जगत् में मानव चेतना के छद्मवेश में अपनी शक्ति, अपने गुण और अपनी उपस्थिति की कुछ किरणों को अभिव्यक्त कर सकें। इस धरती की लीला के सभी दृश्य नाटक के समान हैं और इनकी योजना और व्यवस्था मां ने ही की है जिसमें वैश्व देव उनके सहायक हैं और वे स्वयं प्रच्छन्न अभिनेता।

CWSA खण्ड ३२, पृ. १६-१७

दिव्य मां की चार महान् शक्तियां

मां के चार महान् स्वरूप, मां की जो प्रमुख शक्तियां और व्यक्तित्व हैं उनमें से चार रूप, इस विश्व का मार्गदर्शन करने तथा भौतिक लीला के साथ व्यवहार करने के लिए आगे रहते हैं। उनमें से एक स्थिर विशालता, व्यापक ज्ञान, प्रशान्त अनुग्रह और अपार करुणा, सबसे बड़े-चढ़े, सर्वश्रेष्ठ वैभव और सब पर शासन करने वाली महानता का व्यक्तित्व है। दूसरा रूप उनकी भव्य शक्ति के बल को, दुर्धर्ष आवेग को, उनके क्षात्र स्वभाव को, दुर्दमनीय संकल्प को, प्रचण्ड वेग और सारे संसार को हिला देने

वाली शक्ति को मूर्त रूप देता है। तीसरा रूप उनकी गभीर और रहस्यमय सुन्दरता, समस्वरता और सामञ्जस्य, उनकी गूढ़ और सूक्ष्म समृद्धि और विवश करने वाले आकर्षण और हृदय को जीत लेने वाले लावण्य के कारण उज्ज्वल, मधुर और अद्भुत है। और चौथा स्वरूप उनके अन्तरंग ज्ञान, सचेत और दोष-रहित कर्म तथा हर चीज में शान्त और यथार्थ पूर्णता के गुप्त, गभीर सामर्थ्य से युक्त होता है। इन स्वरूपों के कुछ गुण हैं—बुद्धिमत्ता, शक्ति, सामञ्जस्य और पूर्णता, और वे अपने साथ धरती पर इन गुणों को लाते हैं और मनुष्य के रूप में आने वाली अपनी विभूतियों में प्रकट करते हैं। जो लोग अपनी भौतिक प्रकृति को माता के सीधे और जीते-जागते प्रभाव की ओर खोल सकते हैं उनके दिव्यता की ओर चढ़ने के अनुपात में ही उनमें इन गुणों की स्थापना होगी। इन चार स्वरूपों के चार महान् नाम हैं, महेश्वरी, महाकाली, महालक्ष्मी, और महासरस्वती।

CWSA खण्ड ३२, पृ. १७-१८

दिव्य मां के अन्य महान् व्यक्तित्व

भगवती मां के और भी महान् व्यक्तित्व हैं, लेकिन उन्हें इस धरती पर उतारना ज्यादा कठिन था और वे धरती की चेतना के विकास में प्रधान रूप से आगे नहीं आये। उनमें से कुछ ऐसी उपस्थितियां भी हैं जो अतिमानसिक सिद्धि के लिए अनिवार्य हैं, विशेषकर वह गुह्य और बलशाली उल्लास तथा आनन्द का स्वरूप जो भगवान् के ऊंचे-से-ऊंचे भागवत प्रेम से प्रवाहित होता है। वह आनन्द ही अतिमानसिक आत्मा के सबसे ऊंचे शिखरों का नाता जड़तत्त्व की गहरी-से-गहरी खाइयों के साथ जोड़ता है। उसी आनन्द के पास आश्चर्यमय, परम दिव्य जीवन की चाबी है और अब भी वह अपने गुप्त स्थानों में रहता हुआ विश्व की अन्य शक्तियों के कार्य को सहारा देता है।

CWSA खण्ड ३२, पृ. २३-२४

—श्रीअरविन्द

श्रीमां तथा अन्य देवता

मेरा उन सभी परम्परागत सत्ताओं से सचेतन सम्पर्क रहा है जिनसे 'तेओं' ने मुझे परिचित कराया था, और मुझे उन सभी सत्ताओं का भी परिचय प्राप्त है जिनकी विशद व्याख्या भारतीय परम्परा में आदिकाल से की गयी है। वस्तुतः, जहां तक मैं जानती हूं, सभी धर्मों के सभी देवी-देवताओं से मेरा सम्पर्क रहा है। हां, उनमें एक श्रेणीकरण है (*विभिन्न स्तरों की मुद्रा*)। ये सत्ताएं नीचे से लेकर ऊपर तक पायी जाती हैं... कई प्राणिक हैं, कुछ मानसिक स्तर पर हैं तो कई प्राणिक स्तर पर भी विद्यमान हैं; मानसिक क्षेत्र में मनुष्य ने कई चीजों को देवता बना दिया है : उसने उन सभी चीजों को देवता के पद पर ला बिठाया जो ठीक उसके जैसी नहीं थीं। अगर तुम ग्रहणशील हो तो तुम उन सभी के साथ सम्पर्क साध सकते हो। और उन सबकी अपनी वास्तविकता और अपना अस्तित्व है।

देवताओं का यह क्षेत्र ठीक धरती के ऊपर स्थित है। (वहीं उच्चतम मन भी है) लेकिन क्रमविकास... मेरा मतलब है कि पार्थिव क्रमविकास में वे हिस्सा नहीं ले सकते; यहां धरती पर विकास का एक विशेष ताल-छन्द है जो सघन है, एककेन्द्रित है, और यही कारण है कि धरती का मानव ही उच्चतर बुद्धि प्राप्त करने में सक्षम है और वही अधिमानसिक क्षेत्र से होता हुआ देवताओं के क्षेत्र में पहुंच सकता है, और वहां से सीधा उच्चतर 'मूल सिद्धान्त' तक चढ़ सकता है।

लेकिन जानते हो, यह अधिमानसिक क्षेत्र, देवताओं का यह क्षेत्र, जिसके अन्दर विश्व पर शासन करने और आंशिक रूप से धरती पर भी शासन करने की शक्ति है, उसकी अपनी कोई ठोस वास्तविकता नहीं है। तुम उसके सम्पर्क में आ सकते हो, उस पर क्रिया कर सकते हो; हमारे वैदिक "पूर्वजों" का उस क्षेत्र के साथ सम्पर्क था, तान्त्रिक वहां जाते हैं। लेकिन एक और पथ भी है जो सीधा "मूल सिद्धान्त" तक ले जाता है। उसमें उच्च बौद्धिकता से होते हुए, देवताओं के क्षेत्र में प्रवेश करके जाने की आवश्यकता नहीं होती। उसमें व्यक्ति सीधा, बाण की तरह, अतिमानसिक क्षेत्र में निकल जाता है। यह मेरा जीवन्त अनुभव है।

श्रीअरविन्द के इस सर्वांगीण योग में सभी चीजों का समावेश है, अतः

व्यक्ति सभी अनुभूतियां प्राप्त कर सकता है। उसकी प्रगति भी सर्वांगीण हो सकती है। वस्तुतः विश्व का निर्माण स्पष्ट रूप से अनुभव के क्षेत्र के रूप में ही तो किया गया है। कुछ लोग छोटा तथा ऋजु पथ लेते हैं—यह उनका अपना मामला है। दूसरे मटरगशती करते हुए रास्ता पार करना चाहते हैं—यह भी उनका अपना मामला है !

कुछ अन्य, सभी तरह की अनुभूतियों से गुजरने की तीव्र इच्छा रखते हैं अतः, वे बहुत समय तक अधिमानसिक जगत् में घूमते-भटकते रहते हैं। निस्सन्देह, धार्मिक प्रवृत्तिवाले अभीप्सुओं की बहुसंख्या विभिन्न देवी-देवताओं की ओर खिंच जाती है, वे रुक जाते हैं—उनके लिए वही पर्याप्त होता है।
२६ सितम्बर १९६२ एक शिष्य के साथ श्रीमां के वार्तालाप से

अधिमानसिक सृष्टि तथा नया जगत्

... सन् १९२६ में श्रीअरविन्द ने बाह्य कार्य का दायित्व मुझे सौंप दिया था क्योंकि वे अतिमानसिक चेतना की अभिव्यक्ति में शीघ्रता लाने के लिए एकाग्रता में निमग्न हो जाना चाहते थे। कुछ लोगों से, जो वहां थे, उन्होंने कहा था कि वे उन्हें उनकी सहायता एवं पथ-प्रदर्शन के लिए मुझे सौंप रहे हैं, स्पष्ट ही, मैं श्रीअरविन्द के सम्पर्क में रहूंगी और वे मेरे द्वारा कार्य करेंगे। चीजें एकाएक और जल्दी ही एक निश्चित रूप लेने लगीं। एक बहुत दीप्तिमयी सृष्टि मूर्त रूप ले रही थी, असाधारण व्योरों तक में, शानदार अनुभव हो रहे थे, दिव्य सत्ताओं के साथ सम्पर्क प्राप्त होता था और सब प्रकार की अभिव्यक्तियां हो रही थीं जिन्हें सामान्यतः चमत्कारिक समझा जाता है। अनुभव एक-पर-एक होने लगे थे, सचमुच चीजें बिलकुल उद्भासित रूप में और... मुझे कहना चाहिये, अतीव रोचक रूप में स्वप्रकाशित हो रही थीं।

एक दिन, रोजाना की तरह मैं श्रीअरविन्द को यह बताने गयी कि क्या हुआ है—हम किसी ऐसी चीज तक पहुंच गये थे जो सचमुच बहुत ही रुचिकर थी, और शायद जो हुआ था उसे सुनाने में मैंने जरा अत्युत्साह दिखलाया था—तो श्रीअरविन्द ने मेरी ओर देखा... और कहा: “हां, यह अधिमानसिक सृष्टि है। यह बहुत रोचक है और बहुत सुन्दरता से सम्पादित की गयी है। तुम चमत्कारों को सम्पन्न कर सकोगी और वे तुम्हें

सारे संसार में प्रसिद्ध कर देंगे, तुम पृथ्वी पर सब घटनाओं को उलट-पुलट सकोगी, निश्चित ही...।” और फिर वे मुस्कुराये और बोले : “यह बहुत बड़ी सफलता होगी। परन्तु यह अधिमानसिक सृष्टि है। यह वह सफलता नहीं है जो हम चाहते हैं; हम पृथ्वी पर अतिमानस को सुस्थापित करना चाहते हैं। एक नये जगत् की, अतिमानसिक जगत् की—उसकी समग्रता में—सृष्टि कर सकने के लिए तात्कालिक सफलता को कैसे छोड़ा जाता है यह जानना चाहिये।”

अपनी आन्तरिक चेतना में मैं तुरत समझ गयी : कुछ घण्टों के बाद वह सृष्टि समाप्त हो गयी... और तब से हमने फिर से दूसरे आधारों पर कार्य शुरू किया है।

—‘श्रीमातृवाणी’, खण्ड ९, पृ. १६४-६५

अधिमानस के देवी-देवता सहायक होंगे

अभी तक अधिमानस के देवी-देवताओं ने परम पुरुष के प्रति इसलिए समर्पण नहीं किया है क्योंकि उनकी अपनी महान् शक्ति है और वे ‘उच्चतर चेतना’ में निवास करते हैं। जब श्रीअरविन्द सशरीर थे तब मैं ‘पूजा-दिवसों’ पर आशीर्वाद दिया करती थी। वे देवी-देवता आया करते थे... और जब मैं नीचे जाया करती और तुम लोगों के साथ ध्यान करती थी तब ये सभी देवी-देवता वहां पधारते थे। लेकिन ये सब सचमुच स्वतन्त्र हैं; उदाहरण के लिए, जब मनुष्य गलत कार्य करते हैं, काली के रूपों में से एक-न-एक आकर मुझसे कह जाती है और मैं उससे शान्त रहने को कहती हूं। पिछले साल, एक पूजा-दिवस पर दुर्गा का एक रूप मेरे सम्मुख प्रकट हुआ था। वे सचमुच भव्य दीख रही थीं! मैंने उनसे ‘परम प्रभु’ के प्रति समर्पण करने को कहा। उन्होंने कहा, ‘मैं ठीक यही चाहती थी कि तुम मुझसे यह बात कहो। मैं प्रस्तुत हूं!’ वे सचमुच अद्भुत थीं। १९६०, ‘अतिमानसिक अभिव्यक्ति’ की पहली जयन्ती की पूर्व-सन्ध्या को, कृष्ण मेरे पास आये और उन्होंने कहा, ‘कल के दर्शन का सन्देश मैं लोगों को बांटूंगा।’ तो अगले दिन जब मैं नीचे उतरी और अपने आसन पर बैठी तो वे मेरी गोद में आकर बैठ गये और उन्होंने ही दर्शन के सन्देश बांटे। यह सचमुच कितना रुचिकर था, उनको इस तरह सन्देश बांटते देखना...

तो, देख रहे हो न, ये सभी देवी-देवता अपनी शक्तियों के साथ स्वतन्त्र हैं और अपनी मर्जी के मुताबिक काम करने के लिए स्वतन्त्र हैं।

जब मैं दूसरे मकान में रह रही थी (आश्रम के इस मुख्य भवन में नहीं), मैं शिव से बहुत आकृष्ट थी। मैंने उनसे धरती पर प्रकट होने के लिए कहा। उन्होंने कहा, 'नहीं, मैं ऐसा नहीं करूंगा। मैं धरा पर केवल तभी अवतरित होऊंगा जब वहां अतिमानसिक जाति रहने लगेगी।'

तो मेरे पास कहने को कुछ नहीं रहा। वे स्वतन्त्र हैं। धरती पर मेरे जन्म के साथ-साथ ये सभी देवी-देवता निरन्तर मेरे साथ बने हुए हैं। उन दिनों जब मैं बरामदे में टहला करती थी, कृष्ण मेरे साथ टहलते थे।

मैं जानती हूँ कि ये सभी देवी-देवता 'नयी सृष्टि' में, 'अतिमानस की नूतन सृष्टि' में मानवजाति की सहायता करेंगे...

'Mother You Said So' - 'हुता'

२५ फरवरी १९६६

दुर्गा का परम पुरुष को समर्पण

सारे समय श्रीअरविन्द यहां उपस्थित थे, माता के जिन चार रूपों, यानी जिन चार सत्ताओं की वे बात करते हैं, वे सब भी यहां उपस्थित थीं।...

क्या मैंने कभी तुमलोगों को यह बात बतलायी कि १९६० में, २९ फरवरी को (अतिमानसिक अवतरण की पहली जयन्ती) जब मैं नीचे प्रणाम के लिए गयी, (हर साल दुर्गापूजा के दो-तीन दिन पहले से ही दुर्गा यहां आ जाया करती थीं।) मैं हमेशा की तरह नीचे उतर रही थी कि वे मेरे साथ हो लीं; उस समय उन्होंने परम पुरुष को समर्पण किया।... मैं यह इसलिए बता रही हूँ कि इन देवों के अन्दर समर्पण का भाव नहीं होता। दुर्गा, यूनानी देवता (यद्यपि अब यूनानी देवता अप्रचलित से हो गये हैं; लेकिन भारत के देवी-देवता अब भी बहुत जीवन्त हैं!) इत्यादि में। हां, ये शरीरधारी देवता—हम इन्हें प्रायः स्थानीय कह सकते हैं—शाश्वत के किसी अंश का प्रतिनिधित्व करते अवश्य हैं, लेकिन परम पुरुष के प्रति समर्पण के भाव से एकदम रहित होते हैं। और जब मैं चल रही थी, दुर्गा भी मेरे संग थीं—वास्तव में, भव्य था वह दृश्य! अपनी विचक्षण शक्तियों के साथ दुर्गा, जिनसे विरोधी शक्तियां हमेशा भय खाती हैं, उन्होंने परम पुरुष के प्रति अनायास समर्पण कर दिया, विरोधी शक्तियां एकदम से हक्की-बक्की

रह गयीं : सब कुछ परम पुरुष है। यह उन्होंने जान लिया, मानों उनकी चेतना विस्तार में फैल गयी।

२७ जून १९६२

एक शिष्य के साथ श्रीमां के वार्तालाप से

देवताओं का आना

मैं उन दिनों को याद कर रही हूँ जब श्रीअरविन्द सशरीर थे और मैं, ध्यान-कक्ष में सम्मिलित साधकों को, ध्यान करवाने नीचे उतरा करती थी। वहां खम्भों के कगारों पर सभी देवी-देवता आसीन होते थे—शिव, कृष्ण, लक्ष्मी, त्रिमूर्ति, सभी—छोटे-बड़े, सभी—नियमित रूप से रोजाना इन ध्यानो में आया करते थे। बड़ा सुन्दर दृश्य होता था वह। लेकिन इनके अन्दर परम पुरुष के लिए उस तरह की आराधना की भावना नहीं होती थी। इनके लिए वह भावना कोई मायने ही नहीं रखती थी, क्योंकि प्रत्येक, अपनी सत्ता में, अपनी शाश्वत दिव्यता के बारे में पूरी तरह से अभिज्ञ था; और प्रत्येक जानता था कि वह अन्य सभी देवताओं का प्रतिनिधित्व कर सकता है (प्रचलित पूजा-पाठ का आधार तो यही है, और वे सब इसे अच्छी तरह जानते थे)। वे अनुभव करते थे मानों वे सभी देवी-देवता एक समुदाय हैं, लेकिन उनमें ऐसा कोई गुण नहीं था जो चैत्य जीवन प्रदान करता है : कोई गभीर प्रेम नहीं, कोई गभीर सहानुभूति नहीं, ऐक्य का कोई भाव नहीं। उनके अन्दर बस अपनी दिव्यता का ज्ञान था। उनमें प्रत्येक की अपनी विशिष्ट गतियां थीं, लेकिन परम पुरुष के प्रति आराध्य-भाव या उनका यन्त्र बनने की कोई भावना नहीं थी : वे अनुभव करते थे कि वे ही परम पुरुष के द्योतक हैं, अतः उनमें से प्रत्येक अपने विशेष प्रतिनिधित्व के साथ पूरी तरह से सन्तुष्ट था।

२ अगस्त १९६१

एक शिष्य के साथ श्रीमां के वार्तालाप से

श्रीमां तथा गणेश

हां, तो यह इस तरह घटित हुआ : गणेश वहां उपस्थित थे, हम उस कमरे में ध्यान कर रहे थे (यह ३० साल से ज्यादा पुरानी बात है) जहां से अब 'प्रॉस्पेरिटी' (साधकों की जरूरी चीजों के वितरण का विभाग) मिला करती है। हम आठ-दस लोग वहां थे। ध्यान के बाद हम फूलों के नाम के

अर्थों से वाक्य बनाया करते थे (उन दिनों माताजी फूलों के आध्यात्मिक अर्थ दिया करती थीं)। मैं पुष्प सजा देती थी और प्रत्येक वहां रखे विभिन्न फूलों के नाम के वाक्य बनाया करता था। एक दिन जब समृद्धि, यानी 'प्रॉस्पेरिटी' पुष्प (प्रचलित भाषा में नागकेसर) की बात चली तो मैंने सोचा, (लोग हमेशा कहा करते थे कि गणेश ही धन, सुख-लाभ, संसार की समस्त समृद्धि के देवता हैं) मैंने सोचा, 'हाथी की सूंड के साथ भगवान् की यह सारी कहानी मनुष्य की काल्पनिक रचना नहीं है क्या?' उसके बाद हमने ध्यान किया। और ध्यान में मैंने गणेश को आते हुए देखा, वे आये और ठीक मेरे सामने बैठ गये—एकदम जीवन्त, जीवन्त और भास्वर, उनकी इतनी बड़ी सूंड थी... और वे मुस्कुरा रहे थे! तो, अपने ध्यान में मैंने कहा, 'ओह! तो सचमुच आपका अस्तित्व है!'—'निस्सन्देह, मैं अस्तित्व रखता हूँ! और आर्थिक दृष्टिकोण से आप जो चाहें मुझसे मांग सकती हैं, मैं निश्चित रूप से आपको वह प्रदान करूंगा!'

अतः मैंने मांगा। करीब दस सालों तक समृद्धि का झरना बहता रहा, बहता रहा (प्रचण्ड धाराओं की मुद्रा)। यह अविश्वसनीय था।

६ जुलाई १९५८

एक शिष्य के साथ श्रीमां के वार्तालाप से

मनुष्य किसी एक स्तर पर नहीं, एक साथ कई स्तरों पर जीता है। मनुष्य जितना अधिक ऊंचा उठता है उतनी ही अधिक संख्या में उसमें तत्त्व और व्यक्तित्व होते हैं। चाहे वह मुख्य रूप से भौतिक, प्राणिक या मानसिक स्तर पर रहे या इन स्तरों के किसी विशेष भाग में या इनसे ऊपर के स्तर पर या इनसे परे रहे, उसी के अनुसार व्यक्ति के व्यक्तित्व की गठन में भेद होंगे। व्यक्ति जितना ज्यादा ऊपर उठा हुआ होगा उतना समृद्ध उसका व्यक्तित्व होगा क्योंकि वह केवल अपने सामान्य स्तर पर नहीं रहता बल्कि उन सभी स्तरों पर रहता है जो उससे नीचे हैं और जिनको उसने पार कर लिया है। कुछ गुह्यवादियों का कहना है कि पूर्ण या सर्वांगीण मनुष्य के तीन सौ पैसठ व्यक्तित्व होते हैं; असल में तो इससे भी कहीं अधिक हो सकते हैं। वेद तीन, तैंतीस, तैंतीस सौ और तैंतीस हजार देवों के बारे में कहते हैं जो मनुष्य में निवास कर सकते हैं—स्पष्ट है कि आधारभूत त्रयी निश्चय ही शरीर, जीवन या प्राण और मन की तीन अवस्थाएं या तीन जगत् हैं। —श्रीमां

ईश्वर के रूप तथा उनके कार्य

अतिमानस तथा वैश्व देवता का जगत्

श्रीअरविन्द का काम है धरती का अद्भुत रूपान्तर। मन के ऊपर सचेतन सत्ता के कई स्तर हैं, उनमें वास्तविक दिव्य जगत् वह है जिसे श्रीअरविन्द अतिमानस कहते हैं, यह 'सत्य' का जगत् है। लेकिन बीच में वैश्व देवताओं का जगत् है जिसे श्रीअरविन्द अधिमानस कहते हैं। अभी तक हमारे संसार पर अधिमानस का राज्य रहा है : ज्योतिर्मयी चेतना में यही सबसे ऊंचा स्तर है जहां तक मनुष्य पहुंच पाया है। इसी को परम प्रभु मान लिया गया और जो लोग वहां पहुंचे उन्होंने क्षण-भर के लिए भी उसके परम सत्य-चेतना होने में शंका नहीं की। क्योंकि, साधारण मानव चेतना के लिए उसकी भव्यता और उसकी दीप्तियां इतनी महान् हैं कि वह उन्हें देख कर चौंधिया जाता है और मान लेता है कि अन्ततः यही सत्य का शिखर है। लेकिन तथ्य यह है कि अधिमानस सच्चे भगवान् से बहुत नीचे है। यह 'सत्य' का स्वधाम नहीं है। यह केवल निर्माताओं का और उन सर्जक शक्तियों और देवों का लोक है जिनके आगे लोग इतिहास के आरम्भ से झुकते आये। और वास्तविक भगवान् के अभिव्यक्त न होने और पार्थिव प्रकृति को रूपान्तरित न करने का ठीक यही कारण है कि अधिमानस को अतिमानस माना जाता रहा है। वैश्व देवता पूरी तरह 'सत्य चेतना' में नहीं रहते : वे केवल उसके साथ सम्पर्क में होते हैं और उनमें से हर एक उसकी महिमा के एक पक्ष का प्रतिनिधित्व करता है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ३, पृ. १८४-८५

“रूप देने वालों” का लोक

जोन ऑफ़ आर्क को जो अन्तर्दर्शन होते थे, वे किस कोटि के थे?

स्पष्ट है कि जोन ऑफ़ आर्क का सम्बन्ध उस लोक की कुछ सत्ताओं से था जिसे हम देवों का लोक कहते हैं (अथवा कैथोलिक सम्प्रदाय के शब्दों में सन्तों का लोक, यद्यपि ये दोनों लोक बिलकुल एक नहीं हैं)। जिन सत्ताओं का उन्हें दर्शन होता था, उन्हें वे प्रधान-देवदूत कहा करती थीं। ये

सत्ताएं उच्चतर मानस-लोक और अतिमानस-लोक (विज्ञानमय-लोक) के बीच की होती हैं; यही वह लोक है जिसे श्रीअरविन्द अधिमानस कहते हैं। यह सृष्टिकर्ताओं का, “रूप देने वालों” का लोक है।

जो दो सत्ताएं जोन ऑफ़ आर्क को हमेशा दिखायी देती थीं और उनसे बातें करती थीं, वे यदि किसी हिन्दू के सामने होतीं तो उनका कुछ और ही रूप होता; क्योंकि जब कोई किसी सत्ता को देखता है तो उसके रूप को अपने मन की कल्पना के अनुसार गढ़ लेता है। तुम जो कुछ देखते हो उसे वही रूप दे लेते हो जिसे देखने की तुम्हें आशा होती है। यदि एक ही सत्ता एक ही समय किसी ऐसी मण्डली को दिखायी दे जहां ईसाई, बौद्ध, हिन्दू और शिंतों धर्मावलम्बी हों तो ये सब उसे एकदम अलग-अलग नामों से पुकारेंगे। इनमें से हर एक व्यक्ति कहेगा कि इस सत्ता का स्वरूप इस या उस जैसा था, सभी की राय एक-दूसरे से अलग होगी, यद्यपि सबके सामने एक ही सत्ता प्रकट हुई होगी। भारतवर्ष में तुम लोगों को एक सत्ता का दर्शन होता है और इसे तुम लोग भगवती माता (आद्या शक्ति) कहते हो, कैथोलिक सम्प्रदायवाले इसे ‘कुमारी मेरी’, जापानी ‘क्वानोन’ अर्थात्, दया की देवी और दूसरे धर्मवाले किसी और ही नाम से जानेंगे। ‘शक्ति’ एक ही है, ‘सत्ता’ एक ही है, किन्तु उसकी प्रतिमाएं भिन्न-भिन्न धर्मों में भिन्न-भिन्न प्रकार की बन गयी हैं।

—‘श्रीमातृवाणी’, खण्ड ३, पृ. २२

दैवी तथा आसुरिक प्रकृति

दैवी प्रकृति का लक्षण है—सात्त्विक आदतों तथा गुणों का चरमोत्कर्ष; आत्म-संयम, समर्पण, धार्मिक अभ्यास, पवित्रता, कोमलता, ऋजुता, सत्य, अचञ्चलता, आत्म-त्याग, सभी प्राणियों के लिए दयाभाव, नम्रता, भद्रता, क्षमा, धीरज और स्थिरता; समस्त चञ्चलता, लघुता और अस्थिरता से एक गभीर, मधुर और यथार्थ मुक्ति इसकी स्वाभाविक विशेषताएं हैं। आसुरिक गुणों, यानी क्रोध, लोभ, धूर्तता, छल-कपट, परद्रोह, दर्प, अभिमान और अत्यधिक आत्म-सम्मान को इसमें कोई स्थान नहीं मिलता। परन्तु दैवी प्रकृति की मृदुता, आत्म-त्याग तथा आत्म-संयम में भी दुर्बलता का कोई नामोनिशान नहीं होता; इसमें होती है ऊर्जा और अन्तरात्मा का बल, दृढ़

संकल्प, न्याय के अनुसार तथा सत्य और अहिंसा के अनुसार जीवन यापन करने वाली आत्मा की निर्भयता—तेजः, अभयम्, धृतिः, अहिंसा, सत्यम्।
 दैवी सम्पदा से सम्पन्न मनुष्य की समस्त सत्ता, समस्त प्रकृति पूरी तरह से शुद्ध होती है; उसके अन्दर होती है, ज्ञान की प्यास तथा ज्ञान में अचञ्चल तथा दृढ़ स्थिति—ज्ञानयोगव्यवस्थितिः। यही होती है दैवी प्रकृति में उत्पन्न मनुष्य की सम्पदा तथा समृद्धि।

आसुरिक प्रकृति की भी अपनी सम्पदा तथा बल-समृद्धि होती है, लेकिन वह एकदम अलग तरह की, शक्तिशाली तथा अशुभ होती है। आसुरिक मनुष्यों को प्रवृत्तिमार्ग या निवृत्तिमार्ग के बारे में, अपनी प्रकृति को बाहरी रूप से चरितार्थ करने या उसे अन्तर्मुख करने के बारे में कोई सच्चा ज्ञान नहीं होता। उनके अन्दर न सत्य होता है, न शुद्ध कर्म, न ही सच्चा आचरण। स्वभावतः, वे इस जगत् में आत्मतुष्टि की विशाल क्रीड़ा के सिवाय और कुछ नहीं देखते; उनका जगत् एक ऐसा जगत् है जिसके बीज तथा मूल में कामना की शासनकारी शक्ति तथा विधान होता है, और होता है 'आकस्मिकता' का एक ऐसा जगत् जो उचित सम्बन्धों या कर्मशृंगला से रहित है, ईश्वर-विहीन है, असत्य है, यानी जो सत्य पर आधारित नहीं है। भले उन आसुरिक प्रवृत्तियों वाले मनुष्यों में उच्चतर बौद्धिक तथा उच्चतर धार्मिक सिद्धान्त ही क्यों न हों, फिर भी कार्य के क्षेत्र में उनकी मन-बुद्धि का वास्तविक सिद्धान्त कामना की ही शासनकारी शक्ति तथा विधान होता है। वे हमेशा कामना और अहं की पूजा करते हैं। वस्तुतः जीवन को वे इसी दृष्टिकोण से देखते हैं और इसके मिथ्यात्व के द्वारा वे अपनी अन्तरात्मा तथा बुद्धि का नाश कर लेते हैं। आसुरिक मनुष्य एक भयानक, दानवीय, उग्र क्रिया का केन्द्र या यन्त्र, जगत् में एक विनाशकारी शक्ति, अमंगल और अहित का मूल स्रोत बन जाता है। दम्भ तथा मान से भरपूर, अभिमान के नशे में चूर ये पथभ्रष्ट जीव अज्ञान से विमूढ़ हो जाते हैं, अपने मिथ्या तथा आग्रहपूर्ण उद्देश्यों पर अड़े रहते हैं और अपनी लालसाओं के अपवित्र संकल्प के पीछे आंखें मीच कर भागते फिरते हैं। वे समझते हैं कि कामना और उपभोग ही जीवन का एकमात्र लक्ष्य है और अंधाधुन्ध इनका पीछा करते हुए वे मृत्युपर्यन्त एक सर्वग्रासी, अनन्त चिन्ता और उधेड़-बुन, प्रयास तथा आतुरता के शिकार रहते हैं। सैकड़ों

पाशों से बंधे हुए, काम और क्रोध से घिरे हुए, रात-दिन अपनी कामनाओं और तृष्णाओं की पूर्ति के लिए गलत तरीकों से धन-दौलत जोड़ने में मग्न ये सदा यही सोचते रहते हैं कि, “आज मेरी यह मनोकामना पूरी हो गयी, कल वह दूसरी पूरी हो जायेगी, आज मुझे इतना धन प्राप्त हो गया है, कल और प्राप्त हो जायेगा, मैंने अपने अमुक शत्रु का वध कर दिया है, बाकियों को भी मैं पार लगा दूंगा...” इत्यादि-इत्यादि।

CWSA खण्ड १९, पृ. ४७१-७२

—श्रीअरविन्द

प्राणिक लोकों की चमकदार सत्ताएं

श्रीअरविन्द हमेशा कहते थे कि यह योग वहां से शुरू होता है जहां दूसरे योग समाप्त होते हैं, कि इस योग की उपलब्धि के लिए सबसे पहले यह जरूरी है कि उस अन्तिम सीमा तक पहुंचा जाये जिसे पुराने योग पा चुके थे, अर्थात्, भगवान् का बोध, ऐक्य और भगवान् के साथ तादात्म्य। लेकिन श्रीअरविन्द कहते हैं कि वे भगवान् अधिमन के भगवान् हैं जो मानव-चेतना की दृष्टि से पहले ही अचिन्त्य हैं, क्योंकि वहां पहुंचने के लिए भी व्यक्ति को बहुत-से स्तरों से गुजरना पड़ता है और इन स्तरों पर आदमी चुंधिया जाता है।

प्राण की ऐसी सत्ताएं हैं, यदि वे मनुष्यों के सामने प्रकट हों, या अगर ठीक-ठीक कहा जाये, जब कभी वे मनुष्यों के सामने प्रकट हुई हैं, मनुष्यों ने उन्हें हमेशा परम प्रभु माना है—इन प्राणिक सत्ताओं को! अगर तुम चाहो तो हम उसे छद्मवेश कह सकते हैं, लेकिन वह बहुत सफल छद्मवेश है, क्योंकि जिन्होंने उसे देखा उन्हें पूरा-पक्का विश्वास हो गया कि उन्होंने परम प्रभु को देखा है। और फिर भी, ये प्राणिक सत्ताएं थीं। और अधिमन की ये सत्ताएं, अधिमन के ये देवता हमारी मानवजाति की तुलना में महान् सत्ताएं हैं। जब मनुष्य इनके सम्पर्क में आते हैं तो सचमुच चकरा जाते हैं।

—‘श्रीमातृवाणी’, खण्ड ५, पृ. ३११-१२

प्राणलोक की सत्ताएं तथा धर्म

जैसा कि मैंने कहा, प्राण बहुतेरी छोटी-छोटी सत्ताओं, रूपों, उन सभी मृतक लोगों के अवशेषों से भरा रहता है। लेकिन एक पूरा-का-पूरा ऐसा

प्राणलोक है जिसका इन चीजों से कोई वास्ता नहीं होता, जिसमें प्राणिक सत्ताएं निवास करती हैं, जिनके अन्दर महान् शक्ति, महान् सौन्दर्य होता है। वे अधिकतर लोग, जो आध्यात्मिक जीवन में गहरे नहीं उतरे हैं, लेकिन गुह्यवाद में रुचि रखते हैं, इन प्राणिक सत्ताओं को देख कर एकदम से चकाचौंध हो जाते हैं—कई तो परमेश्वर मान कर इनको पूजने भी लगते हैं। सामान्यतः इसी तरह धर्म बनते हैं। ये सत्ताएं बहुत सफल हो जाती हैं—अनेक धर्मों में ये परम देवता का पद प्राप्त कर लेती हैं—लेकिन ये होती हैं प्राणलोक की सत्ताएं जो अभिभूत करने वाला सौन्दर्य ग्रहण कर सकती हैं। जगत् का यह सबसे बड़ा पाखण्ड है और है बहुत खतरनाक; क्योंकि वे आध्यात्मिक प्रवृत्ति, सच्ची आध्यात्मिक पवित्रता की प्रवृत्ति का रूप धर लेती हैं, जिससे मनुष्य धोखे में आ जाते हैं।

कई धर्म तथा सम्प्रदाय अन्तःप्रकाशों और चमत्कारों पर आधारित हैं, और उनके कण-कण में प्राणिक सत्ताओं का वास होता है; मानव जीवन की सबसे बड़ी मुश्किलों में से यह एक है। मैं आध्यात्मिक जीवन की बात नहीं कर रही, बल्कि उन लोगों के जीवन के विषय में बोल रही हूँ जो परे के साथ सम्बन्ध रखते हैं।

प्राणलोक में ऐसे आकाश हैं (स्वर्ग नहीं) जो सचमुच स्वर्ग-जैसे हैं। स्वभावतः उनमें सच्चे दिव्य तत्त्व का अभाव होता है। केवल आध्यात्मिक शुद्धि तथा सच्ची आध्यात्मिक भावना के होने पर व्यक्ति यह महान् भेद देख सकता है। वे सभी जो प्राण या मानसिक लोक में रहते हैं, पूरी तरह से मोहित, भ्रमित रहते हैं। उस लोक में अद्भुत चीजें, चमत्कारों पर चमत्कार होते रहते हैं (वहीं पर तुम सबसे ज्यादा चमत्कारों को देख सकते हो!)...

आध्यात्मिक भावना में पगे हुए मनुष्यों के लिए सबसे अधिक चमकदार प्राणिक प्रकाशों में भी हमेशा कृत्रिमता होती है—उन्हें वे बनावटी, ठण्डे, आक्रामक, छलावे प्रतीत होते हैं।

मुख्य बात यही है : तुम्हें स्वयं इन सभी चीजों के परे होना चाहिये। इनके छलावे में नहीं आना चाहिये, तुम्हें अपने-आपको धोखे में नहीं पड़ने देना चाहिये !

११ जुलाई १९५६

एक शिष्य के साथ श्रीमां के वार्तालाप से

प्रकृति की आत्माएं

वे सभी सत्ताएं जिनके साथ तान्त्रिक सम्बन्ध रखते हैं, उनका मूल प्राण में नहीं होता, वे 'प्रकृति' की सत्ताएं होती हैं। वे होती हैं रूप और आकार लिये हुए वे प्राकृतिक शक्तियां जो 'प्रकृति' के नियमों का पालन करती हैं। दूसरे शब्दों में, वे नीचे से, प्राणिक नहीं, बल्कि भौतिक जगत् से उद्भूत होती हैं। वे भौतिक में प्राणिक शक्तियां होती हैं, लेकिन उनका उद्गम-स्थल प्राण नहीं होता।

वस्तुतः, जब मैं सूक्ष्म-भौतिक में प्रवेश कर, वहां कार्य करती हूं (सामान्यतः यहां आश्रमवासियों तथा आश्रम के लिए, वैसे सारी दुनिया के लिए) तो बहुत बार मैं 'प्रकृति की आत्माओं' के जैसी सत्ताओं को देखती हूं, बहुधा, बहुत बार वे मेरे साथ-साथ होती हैं या मैं कार्य करते समय उनसे मिलती हूं। वे शक्तियां हैं, देखने में वे ज्यादातर स्त्री-सदृश होती हैं, वे भी मेरे साथ कुछ कार्य करती हैं और उनके अन्दर बहुत शक्ति होती है। ये ही हैं वे शक्तियां जिनका आवाहन तान्त्रिक करते हैं (मैं उन तान्त्रिकों की बात नहीं कर रही जो काली या दुर्गा को पुकारते हैं, वह बिलकुल अलग चीज है, वे एकदम से अलग जगत् की हैं)। अधिकतर ये प्राकृतिक शक्तियां सहायता करने की बहुत इच्छुक होती हैं—बहरहाल, मेरे प्रति ये सब बहुत ही अनुग्रही हैं! लेकिन ये संकीर्ण सत्ताएं होती हैं, यानी इनके अपने सीमित विचार, अपने नियम-कानून, अपनी इच्छाशक्ति होती है, और अगर ये खीज जायें तो अप्रिय चीजें भी कर सकती हैं। फिर भी ये न विद्वेषी शक्तियां हैं और न ही प्राणिक सत्ताएं: ये हैं सूक्ष्म-भौतिक में भौतिक प्रकृति की साकार शक्तियां।

११ मार्च १९५६

एक शिष्य के साथ श्रीमां के वार्तालाप से

आग की आत्मा

... आग के साथ भी यही बात है। मैंने आग की आत्मा देखी है, विशेषकर जापान में, क्योंकि उस देश में आग एक असाधारण चीज है। जब आग शुरू होती है तो लगभग अस्सी मकान, एक पूरा मोहल्ला जल जाता है। यह एक विलक्षण चीज होती है। वहां के मकान लकड़ी के बने होते हैं और दियासलाई की डिब्बियों की तरह जलते हैं। तुम आग सुलगते

देखते हो और अचानक पफ़... ! तुमने कभी दियासलाई की डिब्बियों को जलते नहीं देखा? एक कौंध! उसी तरह, एक कौंध! एक, दो, तीन, दस, बीस मकान मेरी आंखों के सामने जल गये!... तो, आग की आत्मा होती है। एक दिन मैं बिस्तर में थी, एकाग्र होकर लोगों को देख रही थी। अचानक मैंने लपटों के एक बादल को मकान के नजदीक आते देखा। मैंने ध्यान से देखा, वह एक सचेतन सत्ता थी।

—ओ, तुम यहां किसलिए हो?

—मुझे मकान जला देने का अधिकार है, आग शुरू करने का।

—यह सम्भव है, मैंने कहा, पर यहां नहीं।

और वह विरोध न कर सकी।

प्रश्न इसका है कि कौन ज्यादा बलवान् सिद्ध होता है। मैंने कहा :
“नहीं, यहां नहीं जला सकतीं तुम, बस!”

—‘श्रीमातृवाणी’, खण्ड ५, पृ. १५०-५१

मृत्यु की आत्मा

कहा जाता है कि ‘मृत्यु’ का देवता होता है। क्या यह सच है?

हां, मैं उसे “मृत्यु की आत्मा” कहती हूं। मैं उसे भली-भांति जानती हूं, और यह एक असाधारण संगठन है। तुम्हें मालूम नहीं कि यह किस हद तक संगठित है।

मुझे लगता है कि ये मृत्यु की आत्माएं बहुत सारी हैं, मुझे लगता है कि सैकड़ों हैं। मैं कम-से-कम दो से तो मिली हूं। एक से मैं फ्रांस में मिली थी, दूसरी से जापान में, और दोनों बहुत भिन्न थीं; इससे लगता है कि सम्भवतः मानसिक शिक्षण, शिक्षा, देश और विश्वासों के अनुरूप ये आत्माएं अलग-अलग हैं। लेकिन ‘प्रकृति’ की सभी अभिव्यक्तियों की आत्माएं हैं : आग की आत्माएं, हवा की आत्माएं, पानी की आत्माएं, वर्षा की आत्माएं, आंधी की आत्माएं और मृत्यु की आत्माएं।

मृत्यु की हर आत्मा का, वह चाहे कोई भी क्यों न हो, हर रोज मौतों की अमुक संख्या पर अधिकार होता है। वास्तव में यह बड़ा विचित्र संगठन है। यह प्राणिक शक्तियों और ‘प्रकृति’ की शक्तियों में एक प्रकार का

सहयोग है। उदाहरण के लिए, यदि मृत्यु की आत्मा ने निश्चय किया है : “मुझे लोगों की इतनी संख्या पर अधिकार है,” मान लो, चार, पांच, छः या फिर एक-दो व्यक्तियों पर, यह दिन पर निर्भर करता है; उसने निश्चय कर लिया है कि अमुक व्यक्तियों को मरना चाहिये, वह सीधी जाकर उस आदमी के पास जम जाती है जो बस मरने वाला है। लेकिन अगर तुम सचेतन हो (वह व्यक्ति नहीं), अगर तुम इस आत्मा को उसके पास जाते हुए देखो और तुम नहीं चाहते कि वह मरे, तो यदि तुम्हारे अन्दर अमुक गुह्य शक्ति है, तो तुम उससे कह सकते हो : “नहीं, मैं तुम्हें उसे ले जाने से मना करता हूँ।” यह ऐसी बात है जो हो चुकी है, एक बार नहीं, अनेक बार, जापान में भी और यहां भी। लेकिन आत्मा एक ही नहीं थी। इसीलिए मैं कहती हूँ कि वे बहुत-सी होंगी।

—मैं नहीं चाहती कि यह मरे।

—लेकिन मेरा एक मृत्यु पर अधिकार है!

—जाओ और किसी ऐसे व्यक्ति को खोज लो जो मरने के लिए तैयार है।

... तुम उससे कह सकते हो : “मैं इसे लेने से मना करता हूँ,” और तुम्हारे अन्दर उसे लौटा देने की शक्ति है तो वह आत्मा कुछ नहीं कर सकती, चली जाती है। लेकिन वह अपना पावना नहीं छोड़ती और कहीं अन्यत्र चली जाती है। कहीं और एक मौत हो जाती है।

—‘श्रीमातृवाणी’, खण्ड ५, पृ. १४९-५०

हम मृत्यु को देवता क्यों कहते हैं? क्या वह भी मिथ्यात्व के स्वामी की तरह असुर नहीं है?

मनुष्य की चेतना में वह भगवान् बन गया है और यही कारण है कि उसे रूपान्तरित करना इतना कठिन है।

—‘श्रीमातृवाणी’, खण्ड १५, पृ. १३६



मधुर मां, यहां आपने कहा है कि 'परम जननी' ही विश्व की स्रष्ट्री हैं। लेकिन भारत में, साधारणतः, कहा जाता है कि ब्रह्मा ही स्रष्टा हैं।

लेकिन श्रीअरविन्द कहते हैं कि 'परम जननी' ब्रह्मा की जननी हैं। वे सभी देवताओं की जननी हैं।

—श्रीमां

ईश्वर तथा मानवता

विभिन्न धर्मों की प्रार्थनाएं

अधिमानस देवों का, भागवत मूल की ऐसी सत्ताओं का क्षेत्र है जिन्हें विश्व के विकास के निरीक्षण, निर्देशन और व्यवस्था का काम सौंपा गया है और अधिक विशेष रूप से, धरती के रूपायण के साथ-साथ उन्होंने उच्चतर लोकों की सहायता धरती के लिए लाने और मन के निर्माण तथा उसके उत्तरोत्तर आरोहण की अध्यक्षता करने के लिए सन्देशवाहकों और मध्यस्थों का काम किया है। सामान्यतः विभिन्न धर्मों की प्रार्थनाएं अधिमानस के देवों के प्रति सम्बोधित होती हैं। बहुधा ये धर्म, विभिन्न कारणों से, इन देवों में से किसी एक को अपने व्यक्तिगत उपयोग के लिए चुन कर परम देव में बदल लेते हैं।

व्यक्तिगत क्रमविकास में, अधिमानस के ऊपर, अतिमानस में उठ सकने और अपने-आपको उसकी ओर खोल सकने के पहले, व्यक्ति को अपने अन्दर अधिमानस के अनुरूप क्षेत्र और अधिमानसिक चेतना को विकसित करना होगा।

प्रायः सभी गुह्य पद्धतियां और तपश्चर्याएं अधिमानस के विकास और उस पर प्रभुत्व को अपना लक्ष्य बनाती हैं।

—‘श्रीमातृवाणी’, खण्ड १६, पृ. २६७

अधिमानस देवों के साथ मनुष्य का सम्बन्ध

... यह कहा गया है : “मनुष्य देवों के लिए पशु हैं।” लेकिन तभी जब मनुष्य पशु होना स्वीकार करें। सभी वस्तुओं पर प्रभुता मनुष्य के स्वभाव में मूलतः होती है, जब तक कुछ विचार और तथाकथित ज्ञान उसे झुठला न दें, यह सहज और स्वाभाविक होती है।

हम कह सकते हैं कि मनुष्य अपनी प्रकृति की सत्ता की सभी अवस्थाओं का सर्वशक्तिमान् स्वामी है, लेकिन वह यह होना भूल गया है।

सर्वशक्तिमान् होना उसकी स्वाभाविक स्थिति है—लेकिन वह सर्वशक्तिमान् होना भूल गया है।...

स्वाभाविक है कि विकास-चक्र के लिए यह जरूरी था कि मनुष्य

अपनी सर्वशक्तिमत्ता को भूल जाये, क्योंकि इसके कारण वह गर्व और मिथ्याभिमान से फूल उठा था और इस तरह पूर्णतया विकृत हो गया था। यह जरूरी था कि उसे यह अनुभव कराया जाये कि बहुत-सी चीजें उससे ज्यादा बलवान्, उससे ज्यादा शक्तिशाली हैं। लेकिन यह तत्त्वतः सत्य नहीं है। यह विकास-क्रम की एक आवश्यकता है। बस।

मनुष्य अपनी सम्भाव्यता में देवता है। उसने अपने-आपको वास्तविक देव मान लिया। उसे यह सीखने की जरूरत थी कि वह धरती पर रेंगते हुए एक बेचारे कीड़े से बढ़ कर कुछ नहीं है। इसलिए जीवन उसे घिसता, घिसता गया, हर प्रकार से घिसता गया जब तक कि वह... समझा तो नहीं, पर कम-से-कम इस बात को उसने थोड़ा अनुभव तो कर लिया। लेकिन जैसे ही वह ठीक वृत्ति अपनाता है, वह जान लेता है कि सम्भाव्यता में वह देवता है। केवल उसे देवता बनना है, यानी, जो कुछ यह नहीं है उस पर विजय पानी है।

देवों के साथ यह सम्बन्ध बड़ा ही मजेदार है...। जब तक मनुष्य इन दैवी सत्ताओं के आगे उनकी शक्ति, सौन्दर्य, उपलब्धियों के लिए अहोभाव के साथ चौंधियाया हुआ खड़ा रहता है तब तक वह उनका दास रहता है। लेकिन जब वह इन्हें परम पुरुष की भिन्न प्रकार की सत्ताएं—इससे बढ़ कर कुछ नहीं—मान लेता है और अपने-आपको भी परम पुरुष की एक और प्रकार की सत्ता मानता है और यह जान लेता है कि मुझे भी वही बनना है तो सम्बन्ध बदल जाता है। उसके बाद वह देवों का दास नहीं रहता—वह उनका दास नहीं है।

—‘श्रीमातृवाणी’, खण्ड ११, पृ. ३९-४०

तुम्हारा आत्म-दान सम्पूर्ण हो

मधुर मां! क्या दुर्गा और काली की पूजा का कोई आध्यात्मिक मूल्य है?

यह इस बात पर निर्भर करता है कि कौन पूजा करता है।

वास्तव में आध्यात्मिक मूल्य के लिए यह बात महत्त्वपूर्ण नहीं है। योग की सर्वांगपूर्णता तथा सम्पूर्ण सत्य के लिए महत्त्वपूर्ण बात यह है कि

अपनी अभीप्सा को किसी एक या दूसरे रूप तक सीमित न कर दिया जाये। परन्तु आध्यात्मिक दृष्टिकोण से, पूजा चाहे किसी की भी हो, यदि पूजा की क्रिया पूर्णतः सच्ची हो, यदि आत्मदान सर्वांगीण और निःशेष हो तो आध्यात्मिक परिणाम एक समान हो सकता है; कारण, तुम्हारे इष्टदेव चाहे कोई भी या कुछ भी क्यों न हों, उनके द्वारा—कभी-कभी उनके बावजूद—तुम सर्वदा अपने आत्म-निवेदन की सच्चाई की मात्रा और अनुपात में परात्पर सद्वस्तु तक पहुंच जाते हो।

यही कारण है कि सर्वदा यह कहा जाता है कि इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि भगवान् के किस रूप की तुम आराधना करते हो अथवा यहां तक कि किसको तुम अपना पथ-प्रदर्शक चुनते हो, यदि तुम्हारा आत्मदान पूर्ण है और तुम सम्पूर्णतः सच्चे हो तो आध्यात्मिक लक्ष्य को प्राप्त करना तुम्हारे लिए **सुनिश्चित** है।

परन्तु जब तुम पूर्णयोग की सिद्धि प्राप्त करना चाहते हो तब परिणाम एक-सा नहीं होता। तब तुम्हें किसी भी तरह, यहां तक कि अपने आत्म-निवेदन के पथ से भी अपने-आपको सीमित नहीं कर लेना चाहिये...। केवल, ये दोनों बहुत अलग-अलग वस्तुएं हैं।...

—‘श्रीमातृवाणी’, खण्ड ८, पृ. २९४

दिव्य सत्ताओं को अपनी पूजा करवाना अच्छा नहीं लगता

लेकिन अगर तुम सच्ची दिव्य सत्ताओं को लो, तो ये ऐसी चीज को बिलकुल कोई मूल्य नहीं देतीं। उन्हें अपनी पूजा करवाना अच्छा नहीं लगता। नहीं, उन्हें इससे कोई विशेष खुशी नहीं होती! यह मत सोचो कि वे सन्तुष्ट होती हैं, क्योंकि उनमें घमण्ड नहीं होता। घमण्ड के कारण ही मनुष्य को पूजा करवाना अच्छा लगता है; अगर आदमी के अन्दर घमण्ड न हो तो उसे यह अच्छा नहीं लगता कि उसे पूजा जाये; और उदाहरण के लिए, अगर वे एक अच्छा इरादा, एक अच्छी भावना, या एक निष्काम क्रिया, या उत्साह या आनन्द, आध्यात्मिक आनन्द देखें तो ये चीजें उनके लिए प्रार्थना, आराधना या पूजाओं से अनन्त गुना अधिक मूल्य रखती हैं...।

मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूं कि मैं तुमसे जो कह रही हूं वह बहुत ही गम्भीर बात है : अगर तुम एक सच्चे देवता को कुर्सी पर बिठा दो और जब

तक तुम्हारी पूजा चलती रहे तब तक वहीं बैठे रहने के लिए बाधित करो तो शायद तुम्हें पूजा करते हुए देख कर उनका मनोरञ्जन तो हो, लेकिन निश्चय ही उन्हें किसी प्रकार का सन्तोष नहीं होता। बिलकुल नहीं! तुम्हारी पूजा से न तो वे फूल उठते हैं, न प्रसन्न होते हैं और न उनकी महिमा ही बढ़ती है। इस विचार को निकाल बाहर कर देना चाहिये। आध्यात्मिक और भौतिक लोकों के बीच एक पूरा-का-पूरा प्राणिक शक्तियों का प्रभाव-क्षेत्र है, और यही वह क्षेत्र है जो इन चीजों से भरपूर रहता है, क्योंकि ये सत्ताएं उन पर जीती हैं, उनसे सन्तुष्ट हैं और यहां उन्हें तुरन्त महत्त्व मिल जाता है; और उनमें से जिसके सबसे ज्यादा विश्वासी, भक्त और आराधक होते हैं वही सत्ता सबसे खुश होती है और सबसे ज्यादा फूल उठती है। लेकिन हम कल्पना भी कैसे कर सकते हैं कि देवताओं को यह पसन्द होगा...। देवता—मैं सच्चे देवताओं की बात कर रही हूं, 'अधिमानस' के देवताओं की भी, यद्यपि वे अभी तक कुछ-कुछ... ऐसे-वैसे हैं... ऐसा लगता है कि उन्होंने बहुत-से मानवी दोष अपना लिये हैं, फिर भी, इस सबके बावजूद, उनकी चेतना सचमुच उच्चतर होती है—उन्हें इन चीजों से जरा भी खुशी नहीं होती। सच्ची हितैषिता की, बुद्धिमानी, निस्वार्थता, या सूक्ष्म समझदारी की या एकदम सच्ची अभीप्सा की क्रिया उनके लिए एक छोटी-सी धार्मिक पूजा की अपेक्षा अनन्तगुना ऊंची होती है। अनन्तगुना!

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ६, पृ. २२४-२५

मनुष्य ने भगवान् को अपने आकार में गढ़ा

जब एक बहुत छोटा-सा बच्चा किसी का चित्र बनाने की कोशिश करता है तो क्या वह उस व्यक्ति के जैसा होता है? लगभग ऐसी ही चीज है, कभी-कभी तो उससे भी बदतर! क्योंकि बच्चा भोला और सच्चा होता है; जब कि जो व्यक्ति देवताओं का चित्र आंकता है वह पूर्वाग्रहों या पूर्वकल्पित विचारों से, या औरों ने जो कहा है और शास्त्रों में जो लिखा है और लोगों ने जो देखा है उससे भरा होता है। अतः, वह इन सबसे बंधा रहता है। **कभी-कभी, समय-समय पर**, कुछ ऐसे कलाकार होते हैं जिनमें अन्तर्दृष्टि होती है, महान् अभीप्सा होती है, आत्मा और दर्शन की महान् पवित्रता होती है, जिन्होंने ऐसी चीजें बनायी हैं जो सन्तोषजनक हैं।

लेकिन यह बहुत विरल है। और, सामान्य तौर पर, मुझे लगता है कि बात लगभग उलटी है।

मैंने प्राणिक और मानसिक जगत् में उनमें से कुछ रूप देखे हैं जो सचमुच मनुष्य के रचे हुए थे! परे की एक शक्ति है जो अभिव्यक्त होती है। लेकिन मिथ्यात्व के इस त्रिविध जगत् में मनुष्य ने—कम या अधिक रूप में—भगवान् को सचमुच अपने ही आकार में गढ़ा है, और ऐसी सत्ताएं हैं जो उन रूपों में अभिव्यक्त होती हैं जो मानव के सर्जनशील विचार का परिणाम हैं। और तब, यह सचमुच भयंकर होता है! मैंने ऐसी कुछ रचनाएं देखी हैं... (मौन) और वे इतनी अन्धकारपूर्ण होती हैं, इतनी अबोधगम्य, इतनी अर्थशून्य...

कुछ देवता हैं जिनके साथ औरों की अपेक्षा ज्यादा बुरा व्यवहार किया जाता है। उदाहरण के लिए, वह बेचारी महाकाली, जानते हो, उसके साथ कैसी चीजें की जाती हैं!... यह इतना भयंकर है, उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती! लेकिन यह चीज केवल बहुत निचले जगत् में होती है... हां, निम्नतम प्राण में; और इसमें मूल सत्ता की जो चीज होती है... वह प्रतिच्छाया है जो मूल से इतनी दूर होती है कि उसे पहचाना नहीं जा सकता।

प्राण-प्रतिष्ठा

... और जब तुम एक मूर्ति बनाते हो, है न, और पुजारी उसमें प्राण-प्रतिष्ठा करता है—जब मूर्ति-स्थापना का धार्मिक अनुष्ठान यथाविधि किया जाता है, तो पुजारी आह्वान करने की आन्तरिक अवस्था में जाता है और एक ऐसे रूप को या देवता की किसी अंश-विभूति को मूर्ति में उतारने की कोशिश करता है जो उसे शक्ति प्रदान करे—अगर वह पुजारी ऐसा व्यक्ति है जिसमें सचमुच आह्वान करने की शक्ति है तो वह सफल हो सकता है। लेकिन सामान्यतः—हर चीज में अपवाद होते हैं—लेकिन सामान्यतः पुजारी ऐसे व्यक्ति होते हैं जो परम्परागत सामान्य प्रथाओं द्वारा प्रशिक्षित होते हैं। हां, तो जब वे उस देवता के बारे में सोचते हैं जिसका वे आह्वान कर रहे हैं तो वे उनको प्रदान किये गये सब गुणों और रूपों को मन में रखते हुए सोचते हैं, और, साधारणतः, वह आह्वान प्राण-जगत् की सत्ताओं को या अधिक-से-अधिक मानसिक जगत् की सत्ताओं को सम्बोधित हो जाता है, स्वयं 'परम सत्ता' को नहीं। और यही वे छोटी-छोटी सत्ताएं हैं जो इस या उस मूर्ति में अभिव्यक्त

होती हैं। छोटे मन्दिरों में, यहां तक कि परिवारों में भी—कुछ लोगों के घरों में, जानते हो, छोटे-से मन्दिर होते हैं जिनमें कुल-देवता की मूर्ति होती है—ये सत्ताएं उनमें अभिव्यक्त होती हैं; कभी-कभी तो इससे दुर्भाग्यपूर्ण परिणाम आते हैं, क्योंकि ये ऐसे रूप हैं जो मूल देवता से **इतनी** दूर हैं कि... वे बेढंगी रचनाएं होती हैं।

—‘श्रीमातृवाणी’, खण्ड ६, पृ. ३१३-१४, ३१४-१५

मानव-रूपों में अवतरित भगवान्

जड़तत्त्व में चैत्य जीवन का, दिव्य ‘उपस्थिति’ का मूल एक ही है, यह बात जानी हुई है, परन्तु उच्चतर जगत् में ऐसी सत्ताएं हैं जिन्होंने पृथ्वी पर कभी शरीर ग्रहण नहीं किया है और जो यहां कार्य करना चाहती हैं, एक पार्थिव कर्म करना चाहती हैं। अतएव, वे तब तक प्रतीक्षा करती हैं जब तक कि कुछ चैत्य पुरुष अपनी पूर्ण विकासावस्था को नहीं प्राप्त कर लेते और उनके स्वभाव के अनुसार कोई कार्य करने के लिए उनके साथ युक्त नहीं हो जाते। उनकी चेतना पृथ्वी पर चैत्य चेतना के साथ जुड़ जाती है। ये ऐसी सत्ताएं हैं जिन्होंने यहां कभी जन्म ग्रहण नहीं किया है, ऐसी सत्ताएं हैं जिन्होंने सृष्टि की प्रगति के साथ-साथ अपने-आपको मूर्त रूप दिया था। ये शायद प्रथम अंश-विभूति हैं, विशिष्ट कारणों से विश्व में भेजी गयी सत्ताएं हैं—मनुष्य जिन्हें “देव” या “अर्ध-देव” कहते हैं। अतएव, इनमें से किसी सत्ता ने, किसी विशेष कारण से, किसी आकार लेते हुए चैत्य पुरुष को चुन लिया होगा—वह उसकी सहायता करती है, उसके विकास का निरीक्षण करती है, जब वह चैत्य पुरुष पर्याप्त रूप में तैयार हो जाता है और तादात्म्य को धारण करने के योग्य पर्याप्त शक्तिशाली हो जाता है तो वह उसके साथ युक्त हो जाती है, पृथ्वी पर कुछ काम करने के लिए उसके साथ एकात्म हो जाती है। ऐसा बहुत अधिक नहीं होता, पर ऐसा हुआ है और अब भी होता है। तुम्हें पृथ्वी पर देवताओं के अवतार लेने की कहानियां प्राचीन परम्पराओं में मिलती हैं; कुछ पुराण इस बात की चर्चा करते हैं। वह चीज किसी सत्य वस्तु से मिलती-जुलती है। परन्तु सभी चैत्य पुरुष निश्चित रूप से उच्चतर लोकों की सत्ताओं के साथ युक्त नहीं होते।

—‘श्रीमातृवाणी’, खण्ड ४, पृ. २१८-१९

भगवान् के निर्गत अंश

चैत्य पुरुष एक विकासक्रम का परिणाम है, यानी, उस दिव्य चेतना के विकासक्रम का जो जड़तत्त्व में फैल गयी और धीरे-धीरे उसे उठाने लगी। उसे भगवान् तक लौटाने के लिए विकसित करने लगी। इस दिव्य केन्द्र ने बहुत सारे जन्मों में उत्तरोत्तर इस चैत्य पुरुष की रचना की। एक समय आता है जब वह एक प्रकार की पूर्णता तक जा पहुंचता है, अपनी वृद्धि और रचना की पूर्णता तक। तब बहुधा, चूंकि उसमें उपलब्धि के लिए अभीप्सा होती है, भगवान् को और ज्यादा अच्छी तरह अभिव्यक्त करने के लिए अधिक पूर्णता की अभीप्सा होती है, इसलिए साधारणतः वह अन्तर्लयन की किसी सत्ता को अपनी ओर खींच लेता है, अर्थात्, उन सत्ताओं में से किसी को, श्रीअरविन्द जिसे अधिमानस कहते हैं, वह सत्ता जन्म लेने के लिए चैत्य पुरुष में आती है। यह उस प्रकार की सत्ताओं में से हो सकती है जिन्हें मनुष्य सामान्यतः देव कहते हैं, किसी प्रकार के देवता। और जब यह मेल होता है तो स्वभावतः चैत्य पुरुष बड़ा हो जाता है और अवतरित होने वाली सत्ता के स्वभाव का भागीदार बनता है। और तब उसमें अपने अन्दर से निर्गत अंश पैदा करने की शक्ति होती है। इन सत्ताओं में निर्गत अंश तैयार करने की क्षमता होती है, यानी, वे अपने अन्दर से अपना एक भाग प्रक्षिप्त कर सकती हैं जो स्वतन्त्र होकर दूसरों में जन्म लेने के लिए चला जाता है। तो इस तरह केवल दो नहीं, तीन, चार, पांच निर्गत अंश हो सकते हैं। यह उदाहरणों पर निर्भर होता है, लेकिन इस तरह हो सकता है। अर्थात्, उनका एक ही उद्गम हो सकता है जिसे हम चैत्य-भागवत कह सकते हैं। और साधारणतः जब कई निर्गत अंश हों तो भिन्न-भिन्न व्यक्ति सकारण अपने-आपको वह सत्ता मानते हैं क्योंकि उनके अन्दर उस देव का कुछ अंश होता है : यह ऐसा होता है मानों किसी के एक भाग ने अपने-आपको स्वयं अपने अन्दर से बाहर फेंका है और वह अन्य स्वतन्त्र व्यक्ति बन गया। यह अपने-आपको दोहराना नहीं है, बल्कि एक प्रकार का आत्म-प्रक्षेप है।

—‘श्रीमातृवाणी’, खण्ड ५, पृ. २९१-९२

चैत्य पुरुष की उपस्थिति मनुष्य को असाधारण बनाती है

चैत्य पुरुष की उपस्थिति ही मनुष्य को एक असाधारण सत्ता बना देती है—मैं मनुष्य से यह बात बहुत ज्यादा नहीं कहना चाहती, क्योंकि वैसे ही वह अपने को बहुत कुछ समझता है; उसकी अपने बारे में इतनी ऊंची राय है कि उसे प्रोत्साहन देने की जरूरत नहीं! परन्तु फिर भी, यह एक तथ्य है—यहां तक कि विश्व के अन्य लोकों की ऐसी सत्ताएं भी जिन्हें लोग अर्धदेव या देवता कहते हैं, उदाहरण के लिए, वहां की सत्ताएं भी जिसे श्रीअरविन्द 'अधिमानस' कहते हैं, वे भी धरती पर भौतिक शरीर धारण करने के लिए बहुत उत्सुक रहती हैं, ताकि चैत्य का अनुभव कर सकें, क्योंकि उनके अन्दर चैत्य नहीं होता। निश्चय ही इन सत्ताओं में ऐसे बहुत-से गुण होते हैं जो मनुष्यों में नहीं होते, लेकिन उनके अन्दर इस दिव्य सन्निधि का अभाव होता है जो बहुत अपवाद-रूप और विशेष है, और यह एक ऐसा तथ्य है जो धरती के सिवाय और कहीं नहीं। इन सब उच्चतर लोकों के वासियों में—'उच्चतर मन', 'अधिमान' तथा अन्य लोकों के वासियों में चैत्य सत्ता नहीं होती। हां, प्राण जगत् की सत्ताओं में भी चैत्य नहीं होता, लेकिन उन्हें इसका दुःख नहीं है, उन्हें उसकी चाह भी नहीं होती। उनमें केवल बहुत ही विरल सत्ताएं, जो अपवाद-रूप होती हैं, जो परिवर्तित होना चाहती हैं, वे देर नहीं करतीं, झटपट भौतिक शरीर धारण कर लेती हैं, वरना दूसरों को इसकी चाह नहीं होती। कोई चीज उन्हें बांधती है और एक ऐसे शासन के अधीन कर देती है जिसे वे नहीं चाहतीं।

लेकिन यह एक तथ्य है, अतः मुझे यह कहना पड़ता है कि यह ऐसा है। मनुष्य का यह एक अपवादिक गुण है कि उसके अन्दर चैत्य सत्ता होती है, लेकिन सच पूछा जाये तो वह उससे पूरा-पूरा लाभ नहीं उठाता। वह इसके साथ जिस तरह व्यवहार करता है, उससे ऐसा नहीं लगता कि वह इस गुण को बहुत, बहुत वाञ्छनीय मानता हो—ठीक ऐसा ही! वह इसकी अपेक्षा मन के विचारों, प्राण की कामनाओं और शरीर की आदतों को ज्यादा पसन्द करता है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ६, पृ. १८३-८४

धर्मों का युग तथा नूतन सृष्टि

जो भी हो, चीजों को सरल ढंग से प्रस्तुत करने के लिए यह कहा जा सकता है कि पुराना संसार, जिसे श्रीअरविन्द ने अधिमानसिक सृष्टि कहा है, विशिष्ट रूप में, देवताओं का युग था और फलस्वरूप धर्मों का युग था। और जैसा कि मैंने कहा, यह अपने से उच्चतर वस्तु के प्रति मानव प्रयास का पुष्प-रूप था, इसने अनेक धर्मों को जन्म दिया जो कि सर्वश्रेष्ठ आत्माओं और अदृश्य जगत् के बीच एक धार्मिक सम्पर्क-रूप थे। इन सबसे ऊपर एक और भी अधिक ऊंची उपलब्धि को पाने के प्रयत्न-स्वरूप धर्मों की एकता के विचार ने, सब अभिव्यक्त धर्मों के पीछे स्थित इस “अद्वितीय किसी वस्तु” के विचार ने जन्म लिया; और यह विचार, कहा जा सकता है कि, सचमुच मानव अभीप्सा की पराकाष्ठा था। हां तो, यह है अग्रभाग, एक ऐसी चीज जो अभी तक **पूरी तरह** अधिमानसिक जगत् से, अधिमानसिक सृष्टि से सम्बन्ध रखती है और वहां से इस “दूसरी किसी चीज” को देखती प्रतीत होती है जो एक नयी सृष्टि है, पर इसे पकड़ नहीं पाती—इस तक पहुंचने का प्रयत्न करती है, इसे आता हुआ अनुभव करती है, पर इसे समझ नहीं पाती। इसे समझने के लिए चेतना का विपर्यय जरूरी है। यह जरूरी है कि अधिमानसिक सृष्टि से बाहर निकल आया जाये। यह जरूरी है कि नयी सृष्टि, अतिमानसिक सृष्टि आविर्भूत हो। और अब ये सब पुरानी चीजें इतनी पुरानी, इतनी अव्यवहार्य, इतनी मनमानी-सी प्रतीत होती हैं—जैसे ये वास्तविक सत्य की विडम्बना हों। अतिमानसिक जगत् में **धर्म नहीं रहेंगे**। सारा जीवन ही जगत् में प्रकट होती हुई दिव्य ‘एकता’ की, रूपों में अभिव्यक्ति एवं प्रस्फुटन होगा। और जिन्हें लोग आज देवता कहते हैं वे भी नहीं रहेंगे। ये महान् दिव्य सत्ताएं स्वयं भी नयी सृष्टि में भाग ले सकेंगी; पर इसके लिए उन्हें उस परिधान के साथ जिसे “अतिमानसिक उपादान” कहा जा सकता है, पृथ्वी पर आना होगा। और यदि उनमें से कुछ अपने ही जगत् में, जैसी वे हैं वैसी ही, बनी रहना पसन्द करें, यदि वे यह निश्चय करें कि उन्हें भौतिक रूप में अभिव्यक्त नहीं होना है तो उनका सम्बन्ध अतिमानसिक पृथ्वी के प्राणियों के साथ मित्रता का, सहयोगिता का, और बराबरी का सम्बन्ध होगा, क्योंकि उच्चतम दिव्य तत्त्व नये अतिमानसिक जगत् के प्राणियों में पृथ्वी पर प्रकट हो चुका होगा।

—‘श्रीमातृवाणी’, खण्ड ९, पृ. १६६-६७

देवों का आवाहन

विस्तृत होओ मेरे अन्दर, हे वरुण;
शक्तिशाली बनो मेरे अन्दर, हे इन्द्र;
हे सूर्य, प्रदीप्त होओ और भास्वर बनो;
हे चन्द्र, शोभा-सुषमा और मधुरिमा से भर उठो।
उग्र और भयंकर बनो, हे रुद्र;
प्रचण्ड और वेगवान् बनो, हे मरुत्;
बलवान् और साहसी होओ, हे अर्यमा;
विलासी और सुखदायी बनो, हे भग;
कोमल, कृपालु, स्नेहिल और अनुरागी बनो, हे मित्र;
उज्ज्वल और उद्भासक होओ, हे उषा;
हे निशे, भव्य और उर्वर बनो;
हे जीवन, परिपूर्ण, प्रस्तुत और प्रफुल्ल होओ;
हे मृत्यु, एक सौध से दूसरे सौध तक मुझे ले चलो।
इन सबको एक लय-ताल में बांध दो, हे ब्रह्मणस्पति।
मैं इन देवताओं का दास न बनूं, हे काली!

CWSA खण्ड १२, पृ. ४२९

—श्रीअरविन्द

तो, श्रीअरविन्द काली को बड़ी मुक्तिदायिनी शक्ति मानते हैं जो तुम्हें लगन के साथ प्रगति करने की ओर प्रवृत्त करती है और तुम्हारे अन्दर कोई बन्धन नहीं छोड़ती जो तुम्हें प्रगति करने से रोके।

मेरा ख्याल है कि ध्यान के लिए यह अच्छा विषय होगा।

—‘श्रीमातृवाणी’, खण्ड ९, पृ. ४१०

श्रीअरविन्द काली को अधिक महत्त्व क्यों देते हैं?

जिन गुणों का ये देवता प्रतिनिधित्व करते हैं या जिनके ये प्रतीक हैं उन सबको प्राप्त करना आवश्यक और अच्छा है। इसीलिए श्रीअरविन्द उनका आवाहन करते हैं और उनसे प्रार्थना करते हैं कि वे उनकी प्रकृति को अपने अधीन कर लें। किन्तु, जो परात्पर भगवान् के साथ संयुक्त होना चाहता है, जो सर्वोच्च प्राप्ति के लिए अभीप्सा करता है, उसके लिए यह काफी नहीं हो

सकता। इसीलिए अन्त में वे काली का आवाहन करते हैं ताकि वे उन्हें इन देवताओं के परे जाने की शक्ति दें।

क्योंकि, काली विश्व-माता का सबसे अधिक शक्तिशाली पक्ष हैं। इनके द्वारा सृष्ट सभी देवताओं की शक्ति से इनकी शक्ति अधिक महान् है। अतएव इनसे युक्त होने का अर्थ है, सभी देवताओं की समष्टि से अधिक विस्तृत, पूर्ण और शक्तिशाली होना। इसीलिए श्रीअरविन्द काली के साथ एकत्व को सबसे ऊपर और परे का स्थान देते हैं।

—‘श्रीमातृवाणी’, खण्ड १०, पृ. ९६

देवताओं की अपेक्षा मानव परम पुरुष के अधिक निकट है

यह कहना आवश्यक है कि उन सभी सत्ताओं में, जिनका कभी पार्थिव अस्तित्व नहीं रहा—देवता या दानव, अदृश्य सत्ताएं या शक्तियां—उनमें वह चीज नहीं होती जिसे परम प्रभु ने मनुष्य में रखा है। वह है : चैत्य सत्ता। और यह चैत्य सत्ता मनुष्य को सच्चा प्रेम, दयालुता, अनुकम्पा, गभीर कृपालुता प्रदान करती है जो उसकी सभी बाहरी त्रुटियों की क्षतिपूर्ति कर देती है।

देवताओं में कोई त्रुटि नहीं है क्योंकि वे अपनी प्रकृति के अनुसार सहज और बिना किसी विवशता के जीते हैं : देवताओं के रूप में, यही उनके रहने का तरीका है। लेकिन अगर तुम ऊंचे दृष्टिकोण को लो, अगर तुम्हारे अन्दर ऊंचा अन्तर्दर्शन हो, समग्रता का अन्तर्दर्शन हो तो तुम देखोगे कि वे कुछ ऐसे गुणों से वञ्चित रहते हैं जो बिलकुल मानवीय हैं। जब मनुष्य अहंकारी नहीं होता, जब उसने अहं पर विजय पा ली हो तो वह अपने प्रेम और आत्मदान की सामर्थ्य द्वारा देवताओं के जितनी, उनसे भी अधिक शक्ति पा सकता है। अगर वह आवश्यक शर्त को पूरा करे तो मनुष्य देवताओं की अपेक्षा परम प्रभु के अधिक निकट होता है। वह निकटतर हो सकता है। वह सहज रूप से अपने-आपमें ऐसा नहीं है, लेकिन उसके अन्दर ऐसा बनने की शक्ति और सम्भाव्यता है।

अगर मानव प्रेम अपने-आपको बिना किसी मिश्रण के अभिव्यक्त करे तो वह सर्वशक्तिमान् होगा। दुर्भाग्यवश, मानव-प्रेम में अपने-आपके लिए भी उतना ही प्रेम होता है जितना प्रेमपात्र के लिए; यह ऐसा प्रेम नहीं है जिसमें तुम अपने-आपको भूल जाओ। —‘श्रीमातृवाणी’, खण्ड १५, पृ. ३९९-४००

देवी-देवताओं के साथ सम्बन्ध

श्रीअरविन्द के योग के साधक को भूतकाल और वर्तमान में पूजे जाने वाले भगवान् के विभिन्न रूपों के प्रति कैसा मनोभाव रखना चाहिये?

सभी पुजारियों की ओर शुभचिन्तायुक्त सद्भावना। सभी धर्मों के प्रति एक प्रबुद्ध उदासीनता। रही बात 'अधिमानस' की सत्ताओं के साथ सम्बन्ध की, अगर यह सम्बन्ध पहले से है तो हर एक का अपना अलग समाधान होगा।

जो लोग अब तक भगवान् में विश्वास रखते हैं वे निश्चय ही, अगर चाहें तो उनकी आराधना करना जारी रख सकते हैं—लेकिन उन्हें इसका पता होना चाहिये कि इन धर्ममतों और पूजा-पाठ इत्यादि का श्रीअरविन्द की शिक्षा तथा 'अतिमानसिक उपलब्धि' के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है।

मैं कोई आवश्यकता नहीं देखती कि हम इन छोटे या बड़े देवताओं की पूजा करें। हमारी पूजा केवल 'परम प्रभु' की ओर जानी चाहिये जो सभी वस्तुओं और सभी सत्ताओं में हैं।

—श्रीमां

विभिन्न धर्मों के देवी-देवता इत्यादि में से किसी का भी परम पुरुष के साथ वह सम्बन्ध नहीं है जो उनका मनुष्यों के साथ होता है; दूसरे शब्दों में कहें तो इसका कारण मनुष्यों में चैत्य सत्ता का होना है, यानी उनके अन्दर परम पुरुष की उपस्थिति होती है। सभी देवता निर्गमन हैं—स्वतन्त्र निर्गमन—उनका सृजन किसी विशेष उद्देश्य, किसी विशेष क्रिया को सम्पन्न करने के लिए होता है जिसे वे सहज रूप से सम्पन्न करते हैं; इसे वे भगवान् के प्रति सतत समर्पण के भाव से नहीं करते, बल्कि मात्र इसलिए करते हैं क्योंकि उनका गठन इसी प्रकार का है, इसी कारण उनका अस्तित्व है और वे बस अपने-आपमें ही सन्तुष्ट बने रहते हैं। मनुष्यों की तरह परम पुरुष के साथ उनका सम्बन्ध नहीं होता—मानव परम को अपने हृदय में लिये चलता है। यही है देवताओं और मनुष्यों के बीच का महत्त्वपूर्ण भेद।

३० जून १९६२

एक शिष्य के साथ श्रीमां के वार्तालाप से

श्रीमां की ओर खुलना

सच्चा उद्घाटन क्या है?

वह है, श्रीमां की उपस्थिति और उनकी शक्तियों को ग्रहण करना।

इस उद्घाटन को पाने का ठीक-ठीक और पूरा तरीका क्या है?

अभीप्सा, स्थिरता, ग्रहण करने के लिए स्वयं को फैलाना, उन सब चीजों का त्याग करना जो तुम्हें भगवान् की ओर से बन्द कर देने की कोशिश करती हों।

यह कैसे जाना जा सकता है कि मैं श्रीमां की ओर खुल रहा हूँ, अन्य किसी शक्ति की ओर नहीं?

तुम्हें जाग्रत् रहना होगा और यह देखना होगा कि तुम्हारे अन्दर विक्षोभ, कामना, अहंकार आदि की कोई क्रिया न हो।

श्रीमां के प्रति सच्चे उद्घाटन के चिह्न क्या-क्या हैं?

वह स्वयं अपने-आपको तुरत दिखा देता है—जब तुम दिव्य शान्ति, समता, विशालता, ज्योति, आनन्द, ज्ञान, शक्ति का अनुभव करते हो, जब तुम श्रीमां के सात्रिध्य या उपस्थिति या उनकी शक्ति की क्रिया आदि के विषय में सचेतन होते हो। अगर इनमें से किसी भी चीज का अनुभव हो तो इसका अर्थ है कि उद्घाटन है—अगर अधिक चीजों का अनुभव हो तो समझना होगा कि उद्घाटन अधिक पूर्ण है।

सत्ता की सभी गांठों को खोलने का क्या तरीका है?

अभीप्सा करनी चाहिये, सत्ता को भागवत शक्ति की क्रिया को अपने अन्दर कार्य करने की अनुमति देनी चाहिये ताकि वह शक्ति अवतरित हो क्रिया कर सके।

२५ अप्रैल १९३३

श्रीमां की ओर उद्घाटित रहने का अर्थ है कि तुम हमेशा अचञ्चल,

प्रसन्न और विश्वस्त रहो, कभी अशान्त, दुःखी या हताश न होओ; अपने अन्दर मां की शक्ति को कार्य करने दो, उन्हें मार्गदर्शन करने दो, और प्रार्थना करो कि वे तुम्हें ज्ञान दें, शान्ति और आनन्द दें। अगर तुम अपने-आपको उद्घाटित न रख सको तो सतत रूप से, चुपचाप यह अभीप्सा करते रहो कि तुम उद्घाटित हो सको।

श्रीमां तथा पूर्णयोग की ओर उद्घाटित होना

मैं यह नहीं समझ पा रहा कि क्या मैं योग कर रहा हूँ? क्या यह कहा जा सकता है कि मैं पूर्णयोग कर रहा हूँ?

वह प्रत्येक व्यक्ति जो श्रीमां की ओर मुड़ा हुआ है, मेरा योग कर रहा है। यह मानना बड़ी भूल है कि तुम पूर्णयोग “कर” रहे हो, यानी यह मानना कि तुम स्वयं अपने प्रयास के द्वारा योग के सभी पहलुओं को क्रियान्वित और संसिद्ध कर रहे हो। कोई मानव सत्ता यह नहीं कर सकती। तुम्हें करना यह चाहिये कि स्वयं को मां के हाथों में सौंप दो और उनकी सेवा, भक्ति, अभीप्सा के द्वारा अपने-आपको उनकी ओर खोलो; तब अपने प्रकाश और शक्ति द्वारा मां तुम्हारे अन्दर कार्य करेंगी ताकि साधना की जा सके। महान् पूर्ण योगी या अतिमानसिक सत्ता बनने की महत्त्वाकांक्षा रखना और पग-पग पर अपने-आपसे यह पूछना, ‘मैं उसकी ओर कितना बढ़ चुका हूँ’—बड़ी भूल है। उचित मनोभाव है—स्वयं को मां की भक्ति में डुबो दो और वही चाहो जो मां चाहती हैं कि तुम बनो। बाकी सब मां पर निर्भर करता है कि वे तुम्हारे लिए क्या निश्चय करती हैं और तुम्हारे अन्दर कैसे क्रिया करती हैं।

अप्रैल १९२९

सीता ने श्रीराम के वियोग में, श्रीकृष्ण ने गोपियों के विरह में दुःख भोगा—कैसे वे भगवान् की चाह करते थे! ऐसा हमारे साथ नहीं हो सकता क्योंकि आप और श्रीमां यहां हमारे साथ हैं। अगर यह सत्य है तो कभी-कभी हम असन्तोष का अनुभव क्यों करते हैं? मन और प्राण में हम सत्य की स्थापना कैसे करें ताकि असन्तोष

की यह भावना पूरी तरह से खतम हो जाये?

तुम्हारे लिए 'सत्य' यह है कि भगवान् को अपने अन्दर अनुभव करो, श्रीमां के प्रति उद्घाटित होओ और तब तक भगवान् के लिए कार्य करते रहो जब तक कि तुम अपनी सभी क्रियाओं में मां के प्रति सचेतन न बन जाओ। यहां केवल भौतिक उपस्थिति पर्याप्त नहीं होती; तुम्हारे हृदय में भागवत उपस्थिति की चेतना होनी चाहिये और तुम्हारी क्रियाओं में होना चाहिये दिव्य पथ-प्रदर्शन। अगर चैत्य चेतना पूरी तरह जाग्रत् हो तो वह आसानी से, तेजी से, गहराई में इसका अनुभव कर सकती है; एक बार चैत्य चेतना इसका अनुभव कर ले तो यह मन तथा प्राण में भी आसानी से फैल सकता है।

१६ फरवरी १९३२

चैत्य चेतना में निवास करने का लाभ यह है कि तुम्हारे अन्दर उचित अभिज्ञता होती है और तुम्हारी इच्छा श्रीमां की इच्छा के साथ सामञ्जस्यमय हो जाती है, तब तुम अपने अन्दर परिवर्तन के लिए मां की शक्ति का आह्वान कर सकते हो। जो लोग मन तथा प्राण में रहते हैं वे इसे इतनी अच्छी तरह नहीं कर सकते; उन्हें अधिकतर व्यक्तिगत प्रयास करना पड़ता है और चूंकि उनकी इच्छा-शक्ति, उनकी मानसिक तथा प्राणिक शक्ति विभक्त तथा अपूर्ण होती है, कार्य भी अपूर्ण तथा त्रुटिपूर्ण होता है। केवल 'अतिमानस' में ही वह 'अभिज्ञता', वह 'इच्छा-शक्ति', वह 'बल' प्राप्त किया जा सकता है जिसका लक्ष्य एकनिष्ठ होता है, अतः, उसकी क्रिया भी सहज रूप से प्रभावकारी हो जाती है।

७ मई १९३२

तुम्हें बस अभीप्सा करनी चाहिये, अपने-आपको श्रीमां के प्रति खुला रखो, उन सभी चीजों का त्याग कर दो जो श्रीमां की इच्छा का विरोध करें और उन्हें अपने अन्दर कार्य करने दो—अपने सभी काम उन्हीं के लिए करो और इस श्रद्धा के साथ करो कि उन्हीं की शक्ति के द्वारा तुम कार्य करने में समर्थ हो। अगर तुम इस तरह खुले रहो तो समय के साथ-साथ तुम ज्ञान तथा उपलब्धि प्राप्त कर लोगे।

१५ मई १९३२

आत्म-समर्पण की उचित मनोवृत्ति के साथ स्वयं को श्रीमां के प्रति उद्घाटित रखो और धीरे-धीरे तुम मां से वह सब प्राप्त कर लोगे जिसकी तुम्हें अपने अन्दर आवश्यकता है।

२१ नवम्बर १९३२

तुम्हारे पत्र के उत्तर में श्रीअरविन्द^१ का कहना है कि तुम अपने हृदय में श्रीमां पर ध्यान लगा सकते और उन्हें पुकार सकते हो—उनका स्मरण करो और अपना सारा जीवन, समस्त विचार और सभी क्रियाओं को उन्हें समर्पित कर दो। अगर तुम चाहो तो तुम उनके नाम का जप कर सकते हो। अपनी सत्ता को शुद्ध करने और अपनी प्रकृति को बदलने के लिए तुम उनका आह्वान कर सकते हो।

या फिर तुम एकाग्रचित्त होकर, ऊपर से पहले श्रीमां की अचञ्चलता तथा शान्ति, फिर उनकी शक्ति, प्रकाश तथा उनके आनन्द को नीचे उतरने के लिए टेर लगा सकते हो। ये चीजें मस्तक के ऊपर हमेशा रहती हैं—लेकिन मानव-मन के लिए ये अतिचेतना में होती हैं—तुम अपनी अभीप्सा तथा एकाग्रचित्तता के द्वारा उनके प्रति सचेत हो सकते हो, तब तुम्हारा शरीररूपी आधार उनके प्रति खुल सकता है ताकि ये चीजें उतर कर तुम्हारे मन, प्राण तथा शरीर में प्रवेश कर सकें।

१४ मार्च १९३३

यदि कोई साधक अपने स्वभाव की कठिनाइयों के कारण स्वयं को श्रीमां की ओर निरन्तर तथा पूर्ण रूप से न खोल सके, तो क्या इसका यह अर्थ होगा कि वह मां के द्वारा स्वीकृत नहीं होगा?

ऐसे प्रश्न का कोई अर्थ ही नहीं है। जो यहां योग-साधना करते हैं उन्हें श्रीमां ने स्वीकार कर लिया है—क्योंकि “स्वीकृत” का अर्थ है, “योग में प्रविष्ट, शिष्य के रूप में स्वीकृत।” लेकिन, साथ ही, योग में उन्नति करना और योग में सिद्धि पाना इस बात पर निर्भर करता है कि कितनी मात्रा में साधक उद्घाटित हुआ है।

२४ जून १९३३

^१ श्रीअरविन्द द्वारा अपने सचिव को लिखा पत्र जिसे सचिव ने प्रश्नकर्ता को भेजा।

एक बादल ने मुझे घेर लिया है। मेरी रक्षा कीजिये, मुझे बल प्रदान कीजिये। ऐसा हो कि मैं श्रीमां के प्रति पूरी तरह से उद्घाटित हो जाऊं।

श्रीमां के प्रति **पूरी तरह से** उद्घाटित होने के लिए तुम्हें अन्दर और बाहर दोनों तरह से खुला रहना चाहिये। तुम्हें एकदम स्पष्टवादी होकर उनसे सब कुछ कह देना चाहिये—जो कुछ तुम्हारे अन्दर हो उसे उन्हें सहजता तथा सरलता के साथ कह देने में कभी हिचकिचाओ मत। इस तरह तुम एकदम पूरी तरह से उद्घाटित हो सकोगे और श्रीमां भी पूर्ण रूप से तुम्हारी सहायता कर पायेंगी।

२२ जुलाई १९३४

मुझे बैठ कर ध्यान करने के लिए बहुत समय नहीं मिल रहा, लेकिन काम के दौरान सारे समय मेरे अन्दर अचञ्चलता बनी रहती है। अगर मुझे ध्यान में बैठने का समय नहीं मिले तो मुझे क्या करना चाहिये?

स्वयं को उद्घाटित रखो, हमेशा श्रीमां का स्मरण करते रहो—अपने काम में उनकी सहायता तथा उनके पथ-प्रदर्शन के लिए टेर लगाओ। तुम्हें ऐसी अवस्था अपना लेनी चाहिये जिसमें न केवल तुम्हारे अन्दर हमेशा अचञ्चलता बनी रहे, बल्कि चाहे तुम काम में लगे हो, चाहे आराम कर रहे हो, चाहे ध्यान में बैठे हो—सारे समय तुम्हारे अन्दर साधना चलती रहे।

२० सितम्बर १९३४

मैं जानता हूँ कि एक बार श्रीमां हमें शिष्य के रूप में स्वीकार कर लें तो हमें सहज रूप से उन्हीं की शरण में जाना चाहिये। अगर हृदय में हम उनके दर्शन न कर पायें तो हमें दुःखी नहीं होना चाहिये। हमें तो बस उनके साथ आश्रम में रहना है।

नहीं, आश्रम में रहना पर्याप्त नहीं है—व्यक्ति को श्रीमां के प्रति उद्घाटित होना होगा और उस कीचड़ को अपने ऊपर से साफ करना होगा जिसमें वह जगत् के अन्दर रहते हुए खेल रहा था।

२५ सितम्बर १९३४

मैं यह निश्चय न कर पाया कि अपना वर्तमान कार्य छोड़ दूँ या काम बदल लूँ। फिर मैंने सोचा कि ध्यान करने के लिए मैं अपना वर्तमान कार्य छोड़ दूँगा। लेकिन मुझे मालूम नहीं कि मेरे लिए क्या अच्छा है? बस, आप ही सब कुछ जानते हैं।

इन चीजों में मन को इलझाना और सामान्य बुद्धि के द्वारा इनकी व्यवस्था करना तुम्हारी भूल है। श्रीमां के प्रति श्रद्धा-विश्वास के द्वारा—जब तुम्हारी चेतना तैयार हो जायेगी—आवश्यक उद्घाटन हो जायेगा। अपने वर्तमान कार्य में तुम थोड़ी-सी पुनर्व्यवस्था कर सकते हो ताकि तुम्हारे पास ध्यान करने के लिए समय तथा ऊर्जा हों, लेकिन केवल ध्यान के द्वारा वे सब चीजें प्राप्त नहीं हो सकतीं जिनकी आवश्यकता होती है। वे प्राप्त होती हैं, श्रद्धा-विश्वास तथा श्रीमां के प्रति उद्घाटन द्वारा।

९ अक्तूबर १९३४

अतिमानस के अवतरण के लिए हमें कैसी मनोवृत्ति तथा सन्तुलन बनाये रखना चाहिये?

रही बात मनोवृत्ति तथा सन्तुलन की—तो तुम्हें इस बारे में चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं। सारे समय आवश्यक अवस्था बस यही है—पूर्ण श्रद्धा, उद्घाटन, श्रीमां के प्रति आत्म-समर्पण।

२३ सितम्बर १९३५

ऐसा लगता है कि गलत गतियों से पिण्ड छुड़ाने का सबसे अच्छा स्थान है आश्रम, जहाँ हम श्रीमां की कृपा, सहायता, सुरक्षा तथा उनके भौतिक सामीप्य में रहते हैं।

यह केवल तभी सच होता है जब तुम श्रीमां के प्रति उद्घाटित हो सको। यहाँ रह कर अगर तुम इस सबके प्रति बन्द रहो, किसी दूसरे के नियन्त्रण में रहो तो इसमें कोई सहायता नहीं मिलती।

८ मार्च १९३६

—श्रीअरविन्द

‘पुरोधः’ :

दैनन्दिनी

फरवरी

१. सच्चा बल और सुरक्षा हृदय में भगवान् की उपस्थिति से आते हैं। अगर तुम इस उपस्थिति को सदैव अपने अन्दर रखना चाहते हो तो सावधानी के साथ अपनी वाणी, अपने व्यवहार और अपनी क्रिया से गंवारूपन को दूर रखो। स्वाधीनता को उच्छृंखलता न मान बैठो और दुर्व्यवहार को आजादी न मान लो। विचार शुद्ध और अभीप्सा तीव्र होनी चाहिये।
२. तुम्हें अपने अन्दर उस शान्ति को विकसित करना चाहिये जो विजय की निश्चिन्ता से आती है।
३. श्रीमां की शान्ति तुम्हारे ऊपर है। अभीप्सा और अचञ्चल उद्घाटन के द्वारा वह नीचे उतरती है। जब वह प्राण और शरीर पर अधिकार कर ले तो समचित्तता आसान हो जाती है और अन्त में सहज बन जाती है।
४. तुम्हें केवल अपने-आपको खुला रखना चाहिये, तब तुम्हें जिस किसी चीज की जरूरत होगी और जिसे तुम ग्रहण कर सकोगे वह तुम्हें मिल जायेगी।
५. श्रीमां की ओर खुलने के लिए तुम्हें जागरूक रहना चाहिये और इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि तुम्हारे अन्दर क्षोभ, कामना या अहंकार की कोई क्रिया न हो।
६. योग में मुख्य वस्तु है, हर कदम पर भगवान् की कृपा पर विश्वास करना, अपने विचारों को सदा भगवान् की ओर उन्मुख रखना और जब तक श्रीमां की शक्ति का आधार में अनुभव न हो तब तक स्वयं को समर्पित करते रहना।
७. आओ, हम अपने मिथ्यात्व को भगवान् के अर्पण कर दें ताकि ‘वे’ उसे आनन्द-भरे सत्य में बदल दें।
८. ये हमारी कमजोरियां ही हैं जो हमें सदा दुःखी बनाती हैं, और हम मार्ग पर एक कदम आगे बढ़ कर आसानी से इनसे छुटकारा पा

सकते हैं।

९. अपनी अभीप्सा को उद्दीप्त और निष्कपट बनाओ और यह कभी न भूलो कि तुम भगवान् के बालक हो। वह तुम्हें कोई भी ऐसी चीज करने से रोकेगी जो भगवान् के बालकों के अयोग्य हो।
१०. एकमात्र जरूरी चीज है, मां की ओर मुड़ना, और बस इसी की आवश्यकता है।
दुःखी मत होओ, डरो मत, चुपचाप माताजी को अपने अन्दर और अपने द्वारा कार्य करने दो और सब कुछ ठीक हो जायेगा।
११. परम प्रभु के लिए पाप का अस्तित्व नहीं है—हर प्रकार का दोष सच्ची अभीप्सा और रूपान्तर के द्वारा मिट सकता है।
१२. प्रकृति-माता की सुव्यवस्था के अन्दर मनुष्यों को अवकाश का समय इसलिए दिया गया है कि वे आत्मान्वेषण करें, पर वे यह नहीं जानते कि उस समय का सदुपयोग कैसे किया जाये?
१३. प्रश्न—मनुष्य भयभीत क्यों होता है?
उत्तर—इसके तीन कारण हैं। पहला, अपनी सुरक्षा के लिए मनुष्य अत्यधिक चिन्तित होता है। दूसरा, मनुष्य जो कुछ नहीं जानता वह उसे सर्वदा एक प्रकार की बेचैनी का बोध प्रदान करता है और वह चीज उसकी चेतना में भय का रूप ले लेती है। और सबसे अधिक, मनुष्य के अन्दर भगवान् के प्रति स्वाभाविक विश्वास बनाये रखने का अभ्यास नहीं होता। यदि तुम विषय की काफी गहराई में जाओ तो देखोगे कि वास्तव में यही सच्चा कारण है।
१४. समर्पण का कोई सच्चा मूल्य नहीं यदि वह दुःखपूर्ण हो, यदि वह बलिदान हो। समर्पण सच्चे रूप में एक आनन्दपूर्ण दान होना चाहिये। समर्पण में मनुष्य कोई चीज देता है, अपने-आपको समर्पित करता है, पर बलिदान की भावना के बिना।
१५. तुम जितने अधिक शान्त रहोगे उतने ही अधिक शक्तिशाली बनोगे। सभी आध्यात्मिक शक्तियों का सुदृढ़ आधार है समचित्तता। किसी चीज को अपना सन्तुलन न बिगाड़ने दो, तब तुम हर प्रकार के आक्रमण का प्रतिरोध कर सकोगे।
१६. मैं तुम्हारी सहायता और रक्षा के लिए सदैव तुम्हारे साथ हूं। व्यर्थ

की कल्पनाओं को अपने ऊपर शासन मत करने दो। शान्ति वहां है, तुम्हारे हृदय की गहराई में, उसी पर एकाग्र होओ, और तुम्हें वह प्राप्त होगी।

१७. जब तुम ध्यान के लिए बैठो तो तुम्हें बालक की तरह सीधा और सरल होना चाहिये, जिसमें तुम्हारा बाहरी मन बाधा न दे, तुम किसी चीज के लिए अपेक्षा न करो, किसी चीज के लिए आग्रह न करो। एक बार ऐसी स्थिति हो जाये तो बाकी सब कुछ तुम्हारे अन्दर की गहरी अभीप्सा पर निर्भर करता है। और अगर तुम भगवान् को टेर लगाओ, तुम्हें उत्तर अवश्य मिलेगा।
१८. अगर तुम सचमुच कुछ भला करना चाहते हो तो सबसे अच्छी चीज जो तुम कर सकते हो वह यह है कि एक के बाद एक पूरी सच्चाई के साथ अपने अन्दर छोटी-छोटी विजयें प्राप्त करो। इस तरह तुम संसार के लिए अपनी क्षमता के अनुसार अधिक-से-अधिक कर लोगे।
१९. तुम जगत् से भाग कर उसे नहीं बदल सकते। यहां काम करते हुए, नम्रता और विनय के साथ काम करते हुए उसे बदला जा सकता है; तुम्हारे हृदय में आग हो, ऐसी चीज हो जो आहुति की तरह निरन्तर सुलगती हो।
२०. तुम्हारे पास जो कुछ है या तुम जो करते हो उसके बदले कुछ लाभ उठाने की इच्छा संसार में सबसे भद्दी चीजों में से है। और यह सबसे ज्यादा व्यापक है। यह इतनी व्यापक चीज है कि मनुष्य के अन्दर प्रायः सहज बन गयी है। इस तरह हिसाब-किताब करने और लाभ उठाने की इच्छा से बढ़ कर भागवत प्रेम से पूरी तरह मुंह मोड़ लेने वाली चीज और कोई नहीं है।
२१. ऐसी भक्ति जो एकाग्र, शान्त और हृदय की गहराई में नीरव रहती है, सेवा और आज्ञापालन में व्यक्त होती है; वह रोने-धोने, शोर मचाने वाली भक्ति से कहीं अधिक शक्तिशाली, सच्ची और दिव्य है। जीवन को ऐसे पुष्प की तरह खिलना चाहिये जो स्वयं को प्रभु के प्रति अर्पण करता है।
२२. सभी तथाकथित मानव पेचीदगियों के ऊपर भागवत कृपा की प्रकाशमय सरलता कार्य करने के लिए तैयार खड़ी रहती है ताकि

हम उसे क्रिया करने दें।

२३. लोग यह मानते हैं कि कृपा का मतलब है कि तुम्हारे जीवन की हर चीज सरल बन जाये। परन्तु यह सच नहीं है।
कृपा तुम्हारी अभीप्सा की उपलब्धि के लिए काम करती है और अधिक-से-अधिक तेजी से उपलब्धि को प्राप्त करने के लिए हर चीज की व्यवस्था की जाती है।
२४. सच्चा होने के लिए सत्ता के सभी भाग भगवान् के लिए अभीप्सा में एकत्र होने चाहियें—यह नहीं कि एक भाग तो चाहे और दूसरा इन्कार या विद्रोह करे। अभीप्सा में सच्चा होना अर्थात्, भगवान् ही के लिए भगवान् को चाहना, ख्याति, नाम, प्रतिष्ठा, शक्ति या किसी सन्तुष्टि या गर्व के लिए नहीं।
२५. “प्रेम और ज्योति के प्रति अधिकाधिक खुलो।”... चेतना में ज्यादा ऊंचे उठो। अधिक विस्तृत रूप में प्रेम करो, प्रकाश के प्रति खुलो—और समस्त भेद-भाव उड़ जायेंगे। योग करने के लिए तुम्हें जगत् की तरह विस्तृत और व्यापक होना चाहिये।
२६. निश्चय ही अचञ्चल होने का मतलब तामसिक होना नहीं है। वास्तव में उचित चीज अचञ्चलता में ही हो सकती है। जिसे मैं अचञ्चल होना कहती हूँ वह है, किसी भी चीज से विक्षुब्ध हुए बिना अपना काम करते जाना और किसी भी चीज से क्षुब्ध हुए बिना हर चीज का निरीक्षण करना।
२७. साधक भगवान् से शान्ति पाता है, एक ऐसी शान्ति जो बाहरी परिस्थितियों से बिलकुल मुक्त होती है। भगवान् की ओर अधिकाधिक अभिमुख होओ, सच्ची आन्तरिक शान्ति के लिए अभीप्सा करो और तुम्हें इतनी पर्याप्त शान्ति मिल जायेगी कि तुम बिना किसी गड़बड़ के अपना काम करते रहोगे।
२८. अगर तुम सचमुच भगवान् से प्रेम करते हो तो इसे चुपचाप और शान्त रह कर प्रमाणित करो। हर एक के जीवन में जो कुछ आता है वह भगवान् की ओर से हमें कुछ पाठ सिखाने के लिए आता है। और अगर हम उसे ठीक भावना में लें तो तेजी से प्रगति कर सकते हैं। ऐसा करने की कोशिश करो।

एक कप्तान के साथ श्रीमां का पत्र-व्यवहार

(तारा जौहर कई वर्षों तक श्रीअरविन्दाश्रम के शारीरिक-शिक्षण विभाग में छोटे बच्चों (हरित दल) की कप्तान रहीं।)

मधुर मां,

आपके भिन्न-भिन्न चित्रों के सामने बैठ कर किया गया ध्यान, भिन्न-भिन्न अनुभूतियां क्यों देता है?

क्योंकि हर चित्र एक अलग पहलू का और कभी-कभी मेरे अलग-अलग व्यक्तित्व का निरूपण करता है; और किसी चित्र पर एकाग्र होकर व्यक्ति उस विशेष पहलू या अलग व्यक्तित्व के साथ सम्पर्क साधता है जो उस चित्र में आया है या वह चित्र जिसे प्रतिबिम्बित करता है।

चित्र सच्ची और ठोस उपस्थिति होता है, परन्तु आंशिक और सीमित।

४ नवम्बर १९५९

मधुर मां,

चित्र आंशिक और सीमित क्यों होता है?

क्योंकि चित्र केवल क्षण भर का बिम्ब पकड़ता है, व्यक्ति के एक क्षण के रूप-रंग को, और वह रूप-रंग जिस गुजरती हुई मनोवैज्ञानिक स्थिति और आंशिक आत्मिक अवस्था को प्रकट करता है, उसे पकड़ता है। चाहे चित्र यथासम्भव सर्वोत्तम स्थिति में, किसी विरल क्षण में, कुछ विशेष अभिव्यक्त करते हुए अवसर पर लिया गया हो, फिर भी वह किसी भी हालत में सम्पूर्ण व्यक्तित्व को प्रकट नहीं कर सकता।

५ नवम्बर १९५९

मधुर मां,

अवचेतना और निश्चेतना ठीक-ठीक हैं क्या?

निश्चेतना प्रकृति का वह भाग है जो इतना अधिक अंधेरा और सोया हुआ है कि वह पूरी तरह से चेतनाविहीन मालूम होता है जैसे पत्थर, खनिज-लोक। वहां चेतना पूरी तरह से निष्क्रिय और छिपी हुई रहती है। पृथ्वी का इतिहास इस निश्चेतना से ही शुरू होता है।

हम भी इसे अपने अन्दर, अपने शरीर के तत्त्वों में लिये रहते हैं क्योंकि हमारे शरीर के तत्त्व वही हैं जो पृथ्वी के हैं।

लेकिन विकास द्वारा यह सुषुप्त और छिपी हुई चेतना धीरे-धीरे वनस्पति और पशु-जगत् में से होकर जागती है और उनमें अवचेतना का आरम्भ होता है। यह अवचेतना मनुष्य में मन के आविर्भाव द्वारा अपने चरम बिन्दु—चेतना—पर पहुंचती है। इसी भांति यह चेतना भी प्रगतिशील है और जिस अनुपात में मनुष्य विकसित होता है वह अतिचेतन में बदल जाती है।

अतः, हम भी अपने अन्दर अवचेतना को लिये रहते हैं जो पशु के साथ हमारा नाता जोड़ती है और अतिचेतन को भी, जो हमारी आशा और भावी सिद्धि का आश्वासन है।

७ नवम्बर १९५९

मधुर मां,

भक्तियोग और ज्ञानयोग का मतलब क्या है?

ज्ञानयोग वह मार्ग है जो तुम्हें शुद्ध और निरपेक्ष सत्य की ऐकान्तिक खोज द्वारा भगवान् की ओर ले जाता है।

भक्तियोग वह मार्ग है जो सम्पूर्ण, समग्र और शाश्वत प्रेम द्वारा भगवान् के साथ ऐक्य की ओर ले जाता है।

श्रीअरविन्द के पूर्णयोग में ये दोनों कर्मयोग और आत्मसिद्धि-योग के साथ मिल कर एकरूप समग्र बनाते हैं जिसकी परिणति होती है अतिमानसिक सिद्धि के योग में।

५ फरवरी १९६०

मधुर मां,

“परम क्षमताएं” कौन-सी हैं?

प्रसंग जाने बिना उत्तर देना कठिन है। यहां कौन-सी “परम क्षमताओं” की बात हो रही है? उस मनुष्य की क्षमताएं जो अतिमानव होने के पथ पर है या वे जो यहां धरती पर प्रकट होने वाली अतिमानसिक सत्ता में होंगी?

पहले में वे क्षमताएं हैं जो मनुष्य के अन्दर तब विकसित होती हैं जब वह उच्चतर मन और अधिमन की ओर खुलता है और वह उन लोकों के द्वारा ‘सत्य’ का प्रकाश पाता है। ये क्षमताएं परम सत्य की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति नहीं हैं बल्कि उसका अभिलेख या परोक्ष बिम्ब हैं। उनमें अन्तर्भास, पूर्व ज्ञान, तादात्म्य द्वारा ज्ञान तथा कुछ शक्तियों का समावेश होता है, उदाहरण के लिए, नीरोग करने वाली तथा कुछ हद तक परिस्थितियों पर अधिकारपूर्वक क्रिया करने वाली शक्तियों का।

अगर इसका संकेत अतिमानसिक सत्ता की परम क्षमताओं से है तो हम उसके बारे में बहुत कुछ नहीं कह सकते, क्योंकि अभी तक हम इस बारे में जो कह सकते हैं वह ज्ञान के क्षेत्र की अपेक्षा कल्पना के क्षेत्र का अधिक होता है, क्योंकि अभी तक यह अतिमानसिक सत्ता धरती पर प्रकट नहीं हुई है।

२३ अप्रैल १९६०

मधुर मां,

क्या भगवान् के बारे में ठीक धारणा बनाना सम्भव है?

भगवान् के बारे में कोई भी धारणा ठीक नहीं हो सकती क्योंकि धारणाएं मानसिक हलचल हैं और कोई भी मानसिक क्रिया भगवान् को अभिव्यक्त करने-योग्य नहीं है।

केवल अनुभव द्वारा व्यक्ति उन्हें जान सकता है, और अनुभूति को शब्दों में अनूदित नहीं किया जा सकता।

२० जून १९६०

—‘श्रीमातृवाणी’, खण्ड १६, पृ. २६५-६६, २७०-७२

... “शान्ति, शान्ति, हे मेरे हृदय!” तुम इसे लगातार कहो और परिणाम से तुम्हें खुशी होगी।

माताजी के बचपन की झांकी

माताजी ने १८७८ की २१ फरवरी को पैरिस में जन्म लिया था। वे बहुत बार कहा करती थीं : “यद्यपि मेरा जन्म और पालन-पोषण फ्रांस में हुआ है, पर मैं फ्रेंच नहीं हूँ।” उनमें मिस्र, तुर्की आदि देशों का रक्त था और उनके परिवार का मिस्र के राजघराने के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध था। माताजी के जन्म से कुछ ही पहले उनके परिवार के लोग फ्रेंच नागरिक बने थे। उन दिनों का फ्रांस शिक्षा-दीक्षा, बौद्धिक विकास, सभ्यता-संस्कृति, सुरुचि, सौन्दर्यग्राही वृत्ति आदि की दृष्टि से पश्चिम का सिरमौर था। कहा जा सकता था कि जो चीज फ्रांस में न थी वह पश्चिम में और कहीं न थी।

माताजी के पिता, मोरिस अलफ्रासा, उच्चतर मध्यम वर्ग के बैंकर थे। उनकी मां, मातिल्डा, बहुत ज्यादा सुसंस्कृत, दृढ़ संकल्पशील और बहुत ही आधुनिक विचारों की महिला थीं। मोरिस और मातिल्डा अलफ्रासा के दो बच्चे हुए, बड़ा था बेटा, मातियो, जो आगे चल कर फ्रेंच उपनिवेशों में राज्यपाल तथा फ्रांस के विदेश मन्त्रालय में ऊंचे पदों पर रहा। छोटी थी बेटा, जिसका नाम रखा गया मीरा, जिन्हें हम माताजी के नाम से जानते हैं। स्वयं माताजी ने कहा है कि जब कभी, जहां कहीं ज्योति के प्रकट होने की सम्भावना हुई वहां वे उपस्थित थीं। श्रीअरविन्द ने हमें बतलाया है कि बचपन से ही माताजी सामान्य मानव स्तर पर नहीं थीं। वे उससे बहुत ऊंची थीं।

आइये, उनके असाधारण व्यक्तित्व की एक झांकी लेते चलें। एक बार आश्रम के बच्चों से बातचीत करते हुए उन्होंने कहा :

“तुमने इसके बारे में कभी नहीं सोचा। तुमने अपने अन्दर झांक कर कभी नहीं देखा कि तुम अपने ऊपर क्या प्रभाव डालते हो? इसके बारे में कभी सोचा ही नहीं?... कभी यह समझने की कोशिश नहीं की कि तुम कैसे अनुभव करते हो?... उदाहरण के लिए, तुमने कभी यह जानने की कोशिश नहीं की कि तुम्हारे अन्दर निर्णय किस तरह लिये जाते हैं? वे कहां से आते हैं? कौन-सी चीज है जो तुम्हें एक की जगह दूसरा निर्णय लेने के लिए प्रेरित करती है। तुम्हारे निर्णयों और तुम्हारी क्रियाओं में क्या सम्बन्ध है? तुम्हें दो चीजों के बीच चुनने की कितनी आजादी है? तुम

अपने-आपको यह या वह करने या कुछ न करने के लिए किस हद तक स्वतन्त्र पाते हो? तुमने इस विषय पर सोचा है? जब मैं पांच वर्ष की थी तभी से मैं इन बातों में लगी रहती थी।...

“मेरे साथ ऐसा हुआ... मैं पांच या छः सात वर्ष की थी। मेरे पिता को सरकस बहुत पसन्द था। उन्होंने मुझसे कहा : ‘मैं रविवार को सरकस देखने जा रहा हूं। तुम भी मेरे साथ चलना।’ मैंने मना कर दिया। मैंने कहा : ‘मैं सरकस जाने की अपेक्षा कहीं अधिक मजेदार काम में लगी हूं।’ फिर कभी मेरे छोटे मित्रों ने दावत दी जहां हम सब मिल कर मौज-मस्ती करते, लेकिन मैंने मना कर दिया। मैंने कहा : ‘मुझे यहीं बहुत अधिक मजा आता है।’ और यह बात बिलकुल सच्ची थी। इसमें दिग्वावा न था। मेरे लिए दुनिया-भर में इससे बढ़ कर मजेदार चीज कोई और न थी।”

साधारणतः, हम देखते हैं कि माता-पिता अपने बच्चों को बहुत लाड़-प्यार से बिगाड़ देते हैं। मीरा की मां ऐसी न थीं। उन्होंने अपने बच्चों को पूरा-पूरा प्रेम दिया, पर साथ ही अच्छी आदतों पर, नियन्त्रण पर भी नजर रखी। एक बार मां ने कुछ पकाया था, लेकिन बच्चों को उसमें मजा न आया। उन्होंने कह दिया : “हम इसे नहीं खा सकते।” मां ने समझाया : “खाना स्वाद के लिए नहीं खाया जाता। तुम्हें वही खाना चाहिये जो तुम्हारे शरीर को पुष्ट करे।” बात बच्चों की समझ में न आयी और उन्होंने खाने से इन्कार कर दिया। आखिर नियन्त्रणप्रिय मां ने अपना फैसला सुना दिया : “खाना है तो यही खाओ, कुछ और न मिलेगा।” बच्चों ने थोड़ी देर आना-कानी की, फिर भूख से व्याकुल होकर खाने बैठ गये। इतनी कच्ची उम्र में ही उन्हें सिखाया गया था कि जीभ को बहुत महत्त्व न दें।

बालिका मीरा ने अक्षर-ज्ञान पाने से पहले ध्यान करना सीख लिया था। चार वर्ष की कच्ची अवस्था में उसे मालूम था कि वह किसी विशेष उद्देश्य से धरती पर आयी थी। उसे कुछ ऐसा काम करना था जिसकी तुलना दुनिया के किसी काम से नहीं हो सकती। वह चुपचाप बैठ जाती और देखती कि उसके ऊपर ज्योति की बाढ़ आ रही है। बड़े-से-बड़े योगियों के लिए भी यह मामूली बात नहीं है।

छोटी-सी मीरा हमेशा गम्भीर रहा करती थी। छिछोरापन उसे छू तक न गया था। वह अपनी उम्र के बच्चों के साथ खेल-कूद या शरारतें करने

में कभी रस न लेती थी। एक बार उसकी मां ने कहा : “ऐसा लगता है कि सारी दुनिया का भार तेरे ही सिर पर है।” बेटी ने संक्षिप्त-सा उत्तर दिया : “हां”। बेचारी मां इस छोटे-से शब्द का अर्थ कहां जानती थी!

मीरा के पिता बहुत अनुशासनप्रिय थे और छड़ी से परहेज न करते थे और मीरा का बड़ा भाई, मातियो, प्रायः उसका शिकार हुआ करता था। वह जब कभी देर से लौटता तो उसकी पिटाई होती थी। मीरा को यह पसन्द न था। एक सांझ को जब भाई को धुना जा रहा था, धीर-गम्भीर मीरा वहां आ पहुंची और उसने बड़े प्रभावशाली लहजे में कहा : “इसके बाद अगर भाई की पिटाई हुई तो मैं यह घर छोड़ कर चली जाऊंगी।” पिता छः वर्ष की राजकुमारी का हुकुम टाल न सके। उस घर में बेंत का वह आखिरी उपयोग था।

सात वर्ष की आयु तक मीरा ने अक्षर पहचानना भी न सीखा था। एक दिन वह अपने भाई के साथ सड़क पर चली जा रही थी। एक ‘साइन बोर्ड’ ने उसका ध्यान आकर्षित किया। उसने भाई से पूछा : “इस पर क्या लिखा है?” भाई ने मजाक उड़ाते हुए कहा : “तू इतना भी नहीं पढ़ पाती!” और बस, मीरा ने पढ़ाई शुरू कर दी। कुछ ही समय के प्रयास के बाद वह अपनी कक्षा में पहली आने लगी। ऐसा लगा मानों बहुत-से प्रथम पदक उसी के लिए बने थे।

बाद में माताजी ने बतलाया : “जब मैं लगभग बारह वर्ष की थी, मैं पैरिस के नजदीक ‘फ्रॉतैं ब्ल’ नामक वन में अकेली घूमने जाया करती थी। यह एक बहुत पुराना जंगल था जिसमें दो-दो हजार वर्ष पुराने पेड़ थे। मैं किसी पेड़ के नीचे चुपचाप बैठ कर ध्यान में चली जाती थी। उस समय मुझे उन पेड़ों के साथ घनिष्ठता का अनुभव होता था और मुझे बहुत आनन्द मिलता था। मेरी चेतना इन पेड़ों के साथ सायुज्य प्राप्त करती थी। आस-पास की चिड़ियां और गिलहरियां मेरे बहुत पास आ जातीं और कभी-कभी खेलती हुई मेरे शरीर पर दौड़-भाग करती थीं। अगर आदत डाल लो तो तुम्हें भी इस तरह का अनुभव हो सकता है। बस, एकान्त में किसी वृक्ष के तने से अपनी पीठ टिका कर बैठ जाओ और शान्त रहो। तुम धीरे-धीरे पेड़ के जीवन-स्पन्दनों और उसकी चेतना को अनुभव करने लगोगे। तुम्हें यह भी पता लगेगा कि पेड़ मनुष्यों के साथ दोस्ती करना

चाहते हैं। उनमें भी प्रेम होता है। सहानुभूति होती है और वे खुले दिल से हमें आसरा देते हैं। स्पष्ट है कि वे अपने ही ढंग से अनुभव करते हैं। एक बार किसी पुराने पेड़ को काट देने की बात हुई थी। मुझे स्पष्ट लगा कि पेड़ को इस संकट का पता लग गया और उसने मुझसे इस क्रूरता को रोकने के लिए याचना की।”

प्रकृति के साथ घनिष्ठता ने मीरा को पशुओं के साथ सौहार्द प्रदान किया। एक बार माताजी ने अपने बचपन की एक घटना सुनाते हुए कहा : “पैरिस में एक वनस्पति-वाटिका है। उसमें कुछ जानवर भी हैं। वहां एक नया-नया सिंह आया। स्वभावतः उसे पिंजरे में रखा गया था और वह बहुत क्रुद्ध था। पिंजरे में एक दरवाजा था। जब कभी दर्शक उसे देखने आते तो सिंह दरवाजे के पीछे छिप जाता था! मैंने यह देखा और एक दिन पिंजरे के पास जाकर उसके साथ बोलना शुरू किया (जानवर मानव वाणी के लिए बहुत संवेदनशील होते हैं, वे सचमुच सुनते हैं)। मैंने अपने सिंह से बड़ी मधुरता के साथ कहा : ‘ओह! तुम कैसे सुन्दर हो! कैसे खेद की बात है कि तुम छिपे हुए हो! हमलोग तुम्हें देखने के लिए लालायित हैं।’

“वह सुनता रहा। फिर उसने मुझे तिरछी नजरों से देखा। फिर अपना पंजा आगे बढ़ाया और अन्त में अपनी नाक सींखचों से लगा दी, मानों कह रहा हो : आखिर कोई तो है जो मुझे समझता है!”

‘श्वेत कमल’ पुस्तक से

—श्री रवीन्द्रजी

मेरी ‘अम्माजी’

(मेरी नानीजी के जीवन की कुछ बानगियां प्रस्तुत हैं—सं.)

हापुड़ शहर में बहादुरी की धाक थी मेरी नानीजी, उर्फ अम्माजी की। जिन्होंने रेल के महिला-प्रकोष्ठ में घुस आये लुटेरों का नकाब उतरवाया, जिनकी बुढ़ापे में कमर निहुरा गयी थी, लेकिन जो लाठी लेकर सारे हापुड़ में अकेली निर्भीक घूम आया करती थीं उनका जीवन हमेशा ही प्रेरणादायक और रोचक रहा। नानाजी के गुजर जाने के बाद अम्माजी तीन हवेलीनुमा मकानों में अकेली ही रहा करती थीं। जब-जब मम्मी हापुड़ अपने मैके

आर्ती, दो-चार दफा इस बात का जिक्र छेड़ ही देती कि अम्मा, अब तो किसी को साथ रख लो, अकेले इस तरह कब तक चलाओगी; तो वे झट कह उठती—“अरे पगली! अकेली कहां रहती हूं मैं? मेरी इत्ती गैया हैं, उनके कित्ते बछड़े दिन-रात ऊधम मचाते रहते हैं और अगल-बगलवाले सारे तो अपने ही हैं, देखती नहीं है, सारे दिन घर में रौनक लगी रहती है।” मां निरुत्तर-सी हो जाती क्योंकि बात तो पूरी-पूरी सच थी। इतनी गायें थीं अम्माजी के यहां कि सारा दिन कभी उनकी सानी बनाने में लगी हैं, कभी दूध दुहने में जुटी हैं, कभी मट्टा बिलोने में तत्पर हैं, कभी मलाई से घी निकाल-निकाल कर पीपे भर रही हैं तो कभी चूल्हे पर कड़ाहे में दूध औटा कर रबड़ी से लेकर न जाने दुनिया-भर की कौन-कौन सी मिठाइयों का अम्बार लगाने में मगन हैं। यानी, दो हाथ बीसियों काम और सारे दिन घर में बच्चों, स्त्रियों से लेकर बूढ़ों तक का तांता लगा ही रहता था। कोई बच्चा दरवाजे से ही चीखता चला आता—“बिचले घर की अम्मा, लोटा भर मट्टा तो देना जरा, मां को आज घर में कढ़ी बनानी है।” कोई दौड़ती-भागती आती—“अरे अम्मा, मुन्ने का सारा दूध बिल्ली फैला गयी, भूखा रो रहा है बिचारा।” किसी के घर में ऐन वक्त घी खतम हो जाता, तो किसी के यहां बेन्योते अचानक टपके मेहमान का मुंह मीठा कराने को मिठाई न होती, सब ‘अम्मां शरणं गच्छामि’ की दुहाई देते-देते उनके दरवाजे पर आ ठहरते। अम्माजी तो सचमुच जगत्-अम्मा थीं, दिल की नरम, लेकिन जबान की गरम। उनके यहां से खाली हाथ लौटने का तो कभी किसी का सवाल ही न उठा, बल्कि एक लोटा मट्टा मांगो तो बाल्टी भर पकड़ा देंगी, एक कटोरा घी की जगह पतीला थमा देंगी और दो टुकड़े मिठाई मांगने पर झिड़क उठेंगी—“मेरे घर में मिठाई का अकाल पड़ा है क्या, मेहमान के सामने मिठाई परोसेगी और बच्चे क्या लार टपकाते रह जायेंगे,” कह कर आने वाली के हाथ में बड़ा-सा डिब्बा पकड़ा देती, लेकिन उसके जाते-जाते यह कहना नहीं भूलती—“अरी, दुलहिन, डिब्बा मेरा वापिस कर दीजियो, यह दान में नहीं दिया मैंने।” और दुलहिन खी-खी हंसती हुई, पल्लू मुंह में दाबे अपने घर की ओर बढ़ जाती।

माला फेरते समय कोई आ जाता तो दोनों तरफ इशारे के जरिये काम हो जाता, लेकिन जाप खतम होने पर यह कहना कभी न भूलती—“अंधेर

है, जब देखो, जो देखो, मुंह उठाये चला आता है, खालाजी का घर है न, यहां तो कुबेर का खजाना बंट रहा है...।”

सचमुच दरिया दिल थीं मेरी अम्माजी। दूध, दही, मक्खन, मिठाई तो सारे दिन बंटते, इनके अतिरिक्त आड़े वक्त, औने-पौने समय आकर कोई सूई-तागा मांग जाती, किसी के यहां खिचड़ी के साथ अचार की कमी पड़ जाने पर वह तुरन्त अम्मा के दरवाजे की कुण्डी खटखटाती और कभी-कभी अम्मा कह उठतीं—“आओ बिटिया, आओ, माता अन्नपूर्णा बैठी हैं, हाथी से लेकर सूई तक जिस किसी चीज की इच्छा करोगी, मन्नत मांगोगी, यहां आकर सब पूरी हो जायेंगी।” बस अम्माजी को एक चीज से सख्त नफरत थी जो बच्चों को विशेष प्रिय थी—उनकी नजर बचा कर कभी मिठाई तो कभी अचार की फांकों पर हाथ मारना। किसी बच्चे को चोरी करते देख लिया तो बस निगोड़ा, लुच्चा, कमीना, कलमुंहा से लेकर न जाने कौन-कौन से सीठनों की नदी बहा देती, लाठी दिखा-दिखा कर वाक्-प्रहार चलता ही रहता और उसका अन्त होता इस वाक्य से—“कलमुंहे, आज से तेरे घर में मेरे घर का सारा अन्न बन्द। कल तेरी अम्मा ने मेरे घर की चौखट पार की तो...।” अगले दिन क्या, कुछ समय बाद ही अपराधी का कान उमठे उसकी मां, संग-संग चली आतीं अम्माजी के पास—“लो अम्मा, आज तो इसको सबक सिखा ही दो” कह कर जो अपने सुपुत्र को एक झापड़ रसीदती नहीं कि अम्मा बच्चे को अपने आंचल में छिपा कर खुद मां पर बिगड़ जातीं—“एहै, बहू, फूल जैसे बच्चे को मार डालेगी क्या...?”

और जब कभी हम ननिहाल जाते तो बात ही निराली होती। जीजी उर्फ़ जिया और मैं तो हापुड़ की शाहजादियों-सी बनी ऐंठतीं, वैसे भी ‘बड़े शहर से, कुछ दिनों के लिए आयी लड़कियों’ का चेप हम पर लगा ही हुआ था, अम्माजी की धाक और साख शहर में थी, हमारे तो जैसे पांव धरती पर नहीं पड़ते और उधर अम्माजी हमें देख कर ही गले से लिपटा कर मम्मी-पापा का एक ही उलाहने से सत्कार करतीं—“अरे रामकृष्ण, उर्मिला! देखो तो कैसी दुबला गयी हैं मेरी दोनों बच्चियां, क्या तुम्हारे शहर में दूध की जगह पानी बिकता है! अब देखना तुम, हफ्ते भर में अपनी लाड़लियों के चेहरों पर कैसी रौनक ला दूंगी मैं। अरे घर का घी-दूध ही तो सचमुच शरीर को लगता है।” और फिर ननिहाल में जो हमें घी-दूध से

नहलाया जाता कि तौबा-तौबा! दो-चार दिन तो वे मिठाइयां, वह औटाया हुआ दूध, गरमागरम खिचड़ी में घी की नदी भाती, लेकिन फिर हम इतने उकता जाते कि पिण्ड छुड़ाने के लिए नये-नये तीर चलाते, जिनमें से “अम्माजी, आज तो सवेरे से खाना देख कर उलटी जैसी हो रही है,” या “कल रात से ही पेट चल रहा है” जैसे एक-आध ही निशाने पर बैठते, बाकी तो हमेशा की तरह चूक जाते...। और उनसे सुनने को मिलता —

—“अरे बेबी, डौली, तुम दोनों तो बिलकुल लजावा हो, यहां के छोटे-छोटों को देखो, बिल्ली की तरह कैसे गिलास पर गिलास दूध गटक जाते हैं और तुम दोनों हो कि दो घूंट में ऊबा-सांसी लेने लगती हो।” और जब उनका अन्तिम तीर छूटता—“अरे उर्मिला, अब की बेर तो मैं इन दोनों को अपने पास ही रखे लेती हूं, जरा खा-पीकर मांस चढ़ जाये फिर आकर ले जइयो”—तो हम ऐसे सरपट खाना निगल जाते, दूध गटक जाते मानों मम्मी-पापा हमें उसी पल छोड़-छाड़ कर चले जायेंगे।

वाह! क्या मौज-भरे दिन थे वे। हम अम्माजी से कभी पूछते—

“अम्माजी, आपको इतने बड़े-बड़े घरों में डर नहीं लगता क्या?” तो वे खिलखिला कर हंस पड़तीं, कहतीं—“अपने घर में काहे का डर, किसका डर बिटिया। यह सारा शहर तो मेरा अपना है,” और इसी अपनेपन के भरोसे न जाने कितनी छोटी-मोटी चोरियां घरों में हुईं इसका कोई ठिकाना नहीं, कभी अचार का मर्तबान गायब है, कभी रस्सी पर सूखते कपड़े तो कभी गायों के बाड़े से और कुछ नहीं तो भूसे का बोरा ही नदारद। और सवेरे उठ कर वे चोर की सात पुशतों पर वाक्-प्रहार कर उन्हें छलनी बना देतीं। लेकिन उस रात का चोर कोई चलता-फिरता उठाईगीर नहीं, अपने काम में पारंगत था।

शरत्-पूर्णिमा की रात थी, अम्माजी की आंख दो-ढाई बजे ही खुल गयी, आंख खुली नहीं कि उन्हें काम-धाम निपटाने की सूझी। इस घर की बाहर से सांकल लगा, वे तीसरे घर में गायों की सानी बनाने चली गयीं। करीब आध-घण्टे बाद लौटीं तो अपनी चारपाई पर बिस्तर को लिपटा हुआ देख जरा भौचक्की-सी रह गयीं कि अरे मैं तो गद्दा समेट कर गयी नहीं थी... खैर, बिस्तर बिछा कर जरा कमर सीधी करने के ख्याल से फिर से लेट गयीं और लेटते ही उनकी नजर सामनेवाले कोठे पर पड़ी।

वहां की जलती हुई रोशनी ने उन्हें चौंका दिया। समझ गयीं, महाशय चोर पधारे हैं! डर नाम की चीज से तो उनका कभी वास्ता पड़ा ही नहीं था, लम्बे-लम्बे डग भरती हुई कोठे तक गयीं और धड़ाम् से दरवाजा खोल दिया। दो सन्दूकों के ताले तोड़ कर, उनका सामान बटोरने में लगा चोर दरवाजा खुलते ही हकबका गया। मुंह पर ढाटा बांधे था वह। दोनों की आंखें चार हुईं और अम्माजी तन कर दो कदम आगे बढ़ीं। कड़कती हुई आवाज ने उन बढ़ते कदमों को वहीं ठहरने की चेतावनी दी—“रुक जाओ। और आगे न बढ़ना वरना...”

“वरना क्या कर लेगा तू मेरा ए मुंहजला! अरे, तेरे जैसे कई लुच्चे-लफंगों से पाला पड़ा है मेरा।” कहते-न-कहते अम्माजी ने और आगे बढ़ कर लपक कर उसका हाथ पकड़ लिया। इधर उस मुंह ढांपे चोर ने छुरा तान लिया—“मैं कहता हूं, छोड़ दे मेरा हाथ वरना छुरा आर-पार कर दूंगा।”

“अरे करमजला, आया है तू मुझे छुरा भोंकने, देखूं तो तेरी हिम्मत।” गुस्से में बौखलायी अम्माजी ने झपट कर उसके बायें हाथ से अपना बटुआ छीनने की कोशिश की और साथ ही उसके मुंह पर बंधे कपड़े को खींचने के लिए लपकीं। यह सारी क्रिया ऐसे पलक झपकते हो गयी और चोर ऐसा सकपका गया कि छुरा वहीं फेंक, अम्माजी को दोनों हाथों से जोरदार धक्का देकर जो भागा कि अम्माजी ने जब तक उठ कर शोर मचाया, पास-पड़ोस के लोग जमा हुए, तब तक तो वह हवा हो गया था।

जब अम्माजी ने सारी कहानी सुनायी तो लोग दंग रह गये। छुरे का हर कोण से निरीक्षण हुआ। आवाजें आने लगीं—“अम्मा, बड़ी दिलेर हो तुम, रामपुरी चाकू से भी नहीं घबरार्यीं।” दूसरा बोल उठा—“और कहीं वह कुछ कर बैठता!...।” तीसरी दबी हुई आवाज किसी स्त्री की निकली—“सठिया गयी हैं अम्मा, अरे सामान जाता तो जाता, जान पर आफत क्यों मोल ले रही थीं भला?” जितने मुंह उतनी बातें। तभी किसी रिश्तेदार को अम्मा की सुध आयी—“अम्मा, चोट लगी क्या?”

“अरे भाड़ में जाये मेरी चोट बबुआ, वह निगोड़ा अपना मुंह बांधे था, वरना मैं उसको पहचान कर ऐसी चक्की पिसवाती...!”

“खैर मनाओ अम्मा, तुम और सामान दोनों ही सही-सलामत हो।” वह बोला।

“अरे! वह बदमाश मेरा पैसोंवाला बटुआ ले गया।” अम्मा उबल पड़ीं। और साथ ही उनका यह वाक्य भी सुनायी दिया—“करमजला, मुंह तो दिखाया नहीं, लेकिन मुंह-दिखायी ले गया।”

उनकी इस बात पर सब निरुत्तर रह गये।

यह रहा उनकी बहादुरी का एक और नमूना—बात हिन्दू-मुस्लिम दंगों के समय की है। उस समय आधे हापुड़ में हिन्दू बसते थे और आधे में मुसलमान। संयोग से हमारे घर बिलकुल बीचोबीच थे। वैसे हापुड़ में दोनों कौमों के बीच मोहब्बत का रिश्ता था, लेकिन ऐसे दंगों के समय हापुड़ अछूता रहे यह सोचना भी नादानी थी। खूब शोर मचा, अम्माजी ने अपनी तरफ से कई-कई बार भड़कती आग को दवाने की बहुतेरी कोशिशें कीं, लेकिन एक सवेरे जब उनके कानों में उड़ती हुई बात आयी कि मेरठ में कुछ मुसलमानों ने हिन्दुओं पर कहर ढाया है उसका बदला हिन्दू यहां के मुसलमानों से लेंगे, तो वे अपने काम में जुट गयीं। नानाजी, यानी बाबाजी ने बहुतेरा समझाया, लेकिन वे अपने निश्चय से टस से मस नहीं हुईं। घर के आसपास के गरीब धुनिये, मोची, धोबी, कहार सभी को इकट्ठा करके वे अपने तीनों घरों में ले आयीं। उन बेचारों की फूस की झोंपड़ियों में कब कौन आग लगा दे इसका उन्हें बेहद डर था। इतना ही नहीं, घर में दाल-चावल, आटे के पीपे के पीपे भर दिये, कई चूल्हों का इन्तजाम कर दिया, दूध-घी की तंगी का तो कोई सवाल ही नहीं था, और इस तरह उन दहशत-भरे दिनों में अम्माजी ने अपने यहां लंगर खोल लिया। जिनके यहां का खाना-पीना छूना भी अम्माजी पाप समझती थीं, जिनके यहां से चोरी-छिपे जिया कभी अण्डा तो कभी परांठे खाकर आया करती थीं और पकड़ी जाने पर अम्माजी से कड़ी-से-कड़ी भाषा भी सुनने को मिलती —“अरी नासपीटी, फिर खा आयी उन ‘मुसलटों’ के यहां, तू तो कुल को डुबा कर छोड़ेगी।” उन्हीं अम्माजी ने आज अपने दिल के दरवाजे पूरी तरह से उन गरीबों के लिए खोल दिये थे!...

उस दिन तो विद्वेष की आग लपलपा उठी और सवेरे-ही-सवेरे अम्माजी के कानों में खबर पहुंची कि आज हिन्दू उनके घरों पर धावा बोल कर मुसलमानों से बदला लेने आ पहुंचेंगे। मेरी अम्माजी तो इस्पात की बनी थीं, उन्होंने सभी कमरों में उन शरणार्थियों को बन्द कर बाहर से ताले

लगाये और चाबियों का भारी गुच्छा अपनी कमर में खोंस लिया। और तो और, बाबाजी को भी बाहर नहीं निकलने दिया! खुद बाहर सड़क पर निकल आयीं। देखती क्या हैं, जलती मशालें हाथ में लिये भीड़ उन्हीं की तरफ बढ़ती चली आ रही है। कुछ झुकी हुई कमर को सीधा तान कर उन्होंने महाकाली का चण्डी रूप धारण कर लिया। आवाजों पर आवाजें आ रही थीं—“अम्मा, हट जाओ हमारे रास्ते से, नहीं तो यहीं खून-खराबा हो जायेगा”, “अम्मा, हम बदला लेकर रहेंगे, जिन्होंने हम हिन्दुओं को मार डाला है उनको हम काट डालेंगे।” बौरायी हुई उत्तेजित भीड़ का समुद्र अब अम्माजी के बिलकुल करीब आ गया था। अपने दोनों हाथों को ऊपर उठा कर वे गरजीं—“आग लगानी है तो लगाओ, पहले मेरे शरीर को खाक कर दो फिर मेरे घर को आग दिखाना। अरे, कल तक एक दूसरे से गले मिलने वाले आज उनके खून के प्यासे हो गये! लेकिन तुम सब भी मेरी बात कान खोल कर सुन लो, मेरी लाश से गुजर कर ही तुम मेरे घरों में हाथ लगा सकते हो।” अम्माजी की वाणी रुकी नहीं—“मारो, मार डालो अपनी अम्मा को जिसने तुम्हें अपने कलेजे के टुकड़ों की तरह दूध-घी में नहलाया, तुम्हारे बदन में जरा-सी हरारत होने पर जिसने तुम्हें आधी-आधी रात को काढ़ा बना-बना कर पिलाया, उसी अम्मा का तुम सब जवान बेटे मिल कर कर दो आज अन्तिम संस्कार...।”

भीड़ में ऐसा सन्नाटा तैर गया, ऐसा दुःख-सा छा गया जिसने कुछ क्षण पहले की उस भयंकर उत्तेजना को, उन खून की प्यासी आंखों को अचानक सोचने को मजबूर कर दिया। सोच की एक किरण ने उस घनघोर अंधेरे को भेद दिया, छेद दिया।

अम्माजी की वाणी उनके आंसुओं में डूब कर सिसक उठी—“आओ मेरे बच्चो, सब अपनी अम्मा की बांहों में हमेशा की तरह दौड़ते हुए चले आओ...!” प्रेम की वह फुहार सबके अन्तस्तल को भिगी गयी। ‘अम्मा’ ‘अम्मा’ कह कितने कातर स्वर एक साथ फूट पड़े।

आज देश के चौराहे-चौराहे पर हो रहे दंगे-फसादों को देख कर दिल अनायास पूछ बैठता है—“हे भगवान्! कहां गये वे लोग? कहां गये वे दिन??”

‘पुरोध’ मई २००४ से

—वन्दना

उनकी कृपा का स्पर्श कठिनाई को सुयोग में, विफलता को सफलता में और दुर्बलता को अविचल बल में परिणत कर देता है। भगवती माँ की कृपा परमेश्वर की अनुमति है, आज हो या कल, उसका फल निश्चित है, पूर्वनिर्दिष्ट अवश्यभावी और अनिवार्य है।

— श्रीअरविन्द



अमरनाथ शिक्षण संस्थान, मथुरा (उ.प्र.)

फोन— 0565—3240006, 9358340375

Website : anvaschool.org, Email-amarnath.mtr1@rediffmail.com

Date of Publication: 1st February 2017

Rs. 15.00 (Monthly)

Registered: SSP/PY/47/2015-2017

WPP No.TN/PMG/(CCR)/WPP-472/15-17

A school by The Vatika Group 

Holistic

"MatriKiran believes in holistic development and Yoga, Clay Modelling, Indian Music and Ballet are part of its curriculum. The need for extra classes does not arise at all."

Upasana Mahant Laltra

Master of Music, Grade 2 and 3rd Year in school 8



Nature Friendly

"Being a doctor myself, it was very important for me that the school environment should be healthy. Class rooms in MatriKiran are nature friendly, spacious, well ventilated and they open out to green spaces... in communion with nature."

Dr Nidhi Gogia

Ex-Head of Sahani Sharma, Grade 1



ADMISSIONS OPEN

Academic Year 2016-17



MatriKiran

Junior School SOHNA ROAD
Pre Nursery to Grade 5

Senior School VATIKA INDIA NEXT
Grade 6 to Grade 8

www.matrikiran.in

| +91-124-4938200, +91-9650690222

Junior School: W Block, Sec. 49, Sohna Rd, Gurgaon • Senior School: Sec. 83, Vatika India Next, Gurgaon